वर्ष ५
पर्णाङ्क ५१

गुरुकुल पत्रिका

अक्टूबर
१९५२

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

विश्व शांति में धर्म का स्थान	श्री स्वामी कृष्णानन्द
वनस्पति घी में रंग	श्री व्य० पुन्ताम्बेकर और श्री पो० रामचन्द्रराव
इन्द्र, दिव्य प्रकाश का प्रदाता	श्री अरविन्द
उत्तराखण्ड की कला विभूति	श्री कृष्णदत्त वाजपेयी
बालक और माता	श्री कुञ्ज विहारी सिंह

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

भारतीय संस्कृति की व्यापकता

श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, एम. ए.

संस्कृति की परिभाषा विद्वान् लोग अनेक ढंग से करते हैं। वास्तव में जीवन के प्रति समाज या राष्ट्र का जो दृष्टिकोण होता है वही उस समाज या राष्ट्र की संस्कृति का निर्माण करता है। संस्कृति का अभिप्राय उस के इस रूप में निस्सन्देह व्यापक हो जाता है। उस के स्वरूप को हम मुख्यतः दो भागों में समझ सकते हैं। एक तो संस्कृति का बाह्य रूप, जिस में किसी समाज के रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार, वेषभूषा आदि आते हैं तथा दूसरा उस का आतंरिक रूप, जिस में जीवन के दार्शनिक तत्वों का समावेश रहता है। संक्षेप में हम संस्कृति के भौतिक और आध्यात्मिक ये दो रूप कह सकते हैं। इन दोनों रूपों के अध्ययन द्वारा ही हम किसी संस्कृति का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं।

हमें यहां भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में कुछ विचार करना है। भारतीय संस्कृति में आध्यात्मक पक्ष को भौतिक पक्ष की अपेक्षा अधिक महत्व दिया गया है। यदि हम अपने विशाल प्राचीन साहित्य का अवलोकन करें तो विदित होगा कि हमारे आत्मज्ञान का स्थान बहुत ऊँचा रहा है। 'आत्मान विजानीहि' (आत्मा को विशेष रूप से जानो) यही भारतीय ऋषियों का मूल सन्देश था। परन्तु इस के साथ ही शारीरिक एवं मानसिक विकास की ओर से भी हम विमुख नहीं रहे। आध्यात्मिक उन्नति के साथ शारीरिक एवं मानसिक उत्थान हमारी संस्कृति का ध्येय रहा है। कर्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि सम्बन्धी विविध व्यवसायों की लोक कल्याणकारी व्यवस्था पर तथा पुरुषार्थ चतुष्टय एवं वर्णाश्रम धर्म की व्यावहारिक सुदृढ़ नींव पर हमारी संस्कृति का भवन निर्मित हुआ। सत्य, अहिंसा, त्याग और सेवा ये इस भवन के चार महान् स्तम्भ रहे हैं, जिन्होंने युग युगों तक उसे दृढ़ता एवं स्थायित्व प्रदान किया और उसे नष्ट होने से बचाया है।

भारतीय संस्कृति का ध्येय संकुचित न हो कर व्यापक रहा है। भारत के प्राचीन इतिहास को उठा कर देखिये। सहस्रों वर्ष के लम्बे काल में कितनी ही आतंरिक एवं बाह्य विचार-धाराओं को ग्रहण कर भारतीय संस्कृति ने उन्हें अपने विशाल उदर में पचा लिया। चिन्तन की इतनी स्वतन्त्रता और विविधता अन्यत्र कहां मिलेगी? हमारे धर्म, दर्शन, कला साहित्य--सभी में इस मौलिक चिन्तन की अभिव्यक्ति मिलेगी। हठधर्म को हमारे यहा आदर्श नहीं माना गया। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को ज्ञान-विज्ञान का विस्तार से उपदेश देने के बाद भी उस से कहते हैं कि—'हे अर्जुन मैं ने तुझे गुह्य से गुह्य ज्ञान का मर्म बताया, इस पर तू विचार कर और विचार करने के बाद तुझे जो ठीक जान पड़े वह कर—

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।

इस विचार-स्वातन्त्र्य के कारण ही हमारे यहा श्रुति, स्मृति, षड् दर्शन, बौद्ध एवं जैन दर्शन, लोकायत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि कितने ही दर्शनों एव तज्जनित मत-मतातरों की सृष्टि हुई। आधुनिक काल मे भी अनेक महात्माओं एव विद्वानों ने चिन्तन से अपने-अपने दृष्टिकोण उपस्थित किये हैं। परन्तु जीवन-दर्शन के इन विभिन्न दृष्टिकोणों के होते हुये तथा इस विशाल देश में स्थल एव जलवायु की विविधता के कारण बाह्य रूप में अन्तर हते हुए भी हमारी सस्कृति की आत्मा एक रही है। काश्मीर से ले कर कन्याकुमारी तक तथा सौराष्ट्र से ले कर आसाम तक सारा देश एक ही सास्कृतिक चेतना से अनुप्राणित रहा है। विविधता में एकत्व की यह भावना भारत की विशेषता है।

भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्व, जिन में ऐहिक एव पारमार्थिक श्रेयस् का बीज निहित था, देश-काल की सीमा से आबद्ध नहीं हुए। इतिहास से पता चलता है कि एक दीर्घकाल तक ससार के अन्य देशवासियों ने भी इस से लाभ उठाया। बहुत प्रचीन समय में भारत ने मिस्र, असीरिया, बेबीलोन से व्यापारिक एव सास्कृतिक सम्बन्ध स्थापित किये। मौर्य सम्राट् अशोक ने असीरिया, मिस्र, मैसीडोनिया, एपीरस, ताम्रपर्णी, सुवर्णभूमि, आदि अनेक देशों को अपनी धर्म-विजय का सन्देश भेजा। ई० पूर्व द्वितीय शताब्दि के अन्त से मध्य एशिया में भारतीय उपनिवेशों की स्थापना का प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे वहा कोक्कुद, खोतन, कल्मद, भरुक, कूची, अग्निदेश आदि राज्यों में भारतीय धर्म, कला, भाषा और साहित्य का विकास हुवा इन में से कूची और खोतन (कुस्तन) भारतीय सस्कृति के प्रधान केन्द्र हुए। खोतन के राजाओं के नाम विजय सम्भव, विजयवीर्य, विजयजय, विजय धर्म आदि मिलते हैं। वहा का गोमांत-विहार बौद्ध शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र था। चौथी शताब्दि के अन्त में जब चीनी यात्री फाह्यान वहा गया तब महायान मतावलम्बी ३००० बौद्ध भिक्षु इस विहार में निवास करते थे तथा वहा धर्म यात्राए बडे समारोह के साथ चलती थी।

ईसा की प्रथम ६ शताब्दियों में दक्षिण पूर्वी एशिया में अनेक भारतीय उपनिवेशों की स्थापना हुई। हिन्दचीन के एक बड़े भाग का नाम सुवर्णभूमि' तथा हिन्देशिया के द्वीपों की सज्ञा 'सुवर्ण द्वीप' प्रसिद्ध हुई। वहा जिन भारतीय राज्यों की स्थापना हुई उन के नाम कम्बुज, चम्पा कौठार, पाडुरंग, श्रीविजय, मालव, दशार्ण, गन्धार आदि मिलते हैं। इसी प्रकार अनेक नगरों के नाम अयोध्या, वैशाली, मथुरा, श्रीक्षेत्र, तक्षशिला, हंसावती, कुसुमनगर, रामावती, धान्यवती, द्वारवती, विक्रमपुर आदि मिलते हैं। सुवर्णभूमि तथा सुवर्णद्वीप में भारतीय रहन सहन, रीति-रिवाज, लिपि, भाषा और कला का प्रसार हुआ। वहा के आदिम निवासियों के साथ भारतीयों ने जिस प्रेम एव सहिष्णुता का व्यवहार किया उस के कारण ये लोग बहुत प्रभावित हुए। फलस्वरूप ये प्रदेश भारतीय सस्कृति के रग में पूर्णरग गये और उन की गणना 'बृहत्तर भारत' के अन्तर्गत की जाने लगी। ये उपनिवेश भारतीय सस्कृति के तो केन्द्र बने ही, साथ ही उन के द्वारा भारत, कोचीन, जापान, कोरिया आदि देशों के साथ भी अपने सांस्कृतिक सम्बन्धों को दृढ़ बनाने में सहायता मिली।

भारतीय सस्कृति का इन दूरस्थ देशों में प्रचार करने का श्रेय हमारे पूर्वज धर्म-प्रचारकों को है।

वैरोचन, काश्यप मातग, आर्यकाल, धर्मकाल धर्मरत्न, धर्मप्रिय, कुमारजीव, गुणवर्मा, बोधि धर्म, गुणभद्र, शातरक्षित, पद्मसम्भव, 'जिनमित्र', दीपकर श्रीज्ञान आदि कितने ही विद्वानों ने यात्रा-जनित कष्टों की परवाह न कर संसार के अनेक भागों में भारतीय संस्कृति का सन्देश फैलाया। विभिन्न देशों के साथ हमारे पूर्वजों ने सांस्कृतिक, राजनैतिक एव आर्थिक सम्बन्ध स्थापित कर उन्हें दृढ़ता प्रदान करने के लिए जिस उदारता एवं सहिष्णुता का परिचय दिया वह मानव-इतिहास की एक गौरवपूर्ण गाथा है।

प्राचीन भारत मे जब तक जीवन के प्रति व्यापक दृष्टिकोण रहा, जब तक 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उदार भावना यहा के लोक मानस का आदोलत करती रही, तब तक हम ससार में ऊचे उठे रहे। हम ने ज्ञान विज्ञान के विविध क्षेत्रों में अनेक देशों के साथ आदान-प्रदान करने मे सकोच नहीं किया। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' की कल्याणकारी भावना से प्रेरित हो कर हम अपने अगाध ज्ञान और अनुभव का उदारता के साथ दूसरों में वितरण करते रहे साथ ही दूसरों की उपयोगी बातों को ग्रहण करने में भी हम ने संकोच नहीं किया। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, आदि विद्वानों ने अपने समय के इस व्यापक दृष्टिकोण की ओर इङ्गित किया है वराहमिहिर ने लिखा है कि ज्ञान की कुछ दिशाओं में म्लेच्छ कहे जाने वाले यवन अर्थात् यूनानी लोगों की अच्छी गति है, वे लोग ऋषियों के तुल्य ही पूज्य हैं—

'म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक्शास्त्रमिद स्थितम्।
ऋषिवत्तेपि पूज्यन्ते।' (बृहत्संहिता २, १४)।

विदेशियों के प्रति इस से अधिक सम्मान का भाव और क्या हो सकता है।

दुर्भाग्य से इस विचार-धारा को हम आगे बहुत समय तक स्थिर नहीं रख सके। हिन्दू शासन के उत्तर मध्यकाल में राजनैतिक एव सामाजिक विकेन्द्रीकरण ने हमारी शक्ति को कमजोर कर दिया। जब आपसी फूट दलबन्दी, स्वार्थ एव अहम्मन्यता की वृद्धि होने लगी तब इस देश के पतन का द्वार खुल गया। जनता की मनोवृत्ति सकीर्ण हो जाने से नये विचारों के आदान प्रदान की परम्परा भी समाप्त हो गयी। ग्यारहवीं शताब्दी में जब अलबेरूनी भारत आया तो उस ने हिन्दुओं में उक्त दोष परिलक्षित किये। उस ने लिखा है कि ये लोग अपने को सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र मे बहुत ऊंचा समझते हैं और अपने आगे अन्य सभी लोगों को तुच्छ और उन के विचारों को हेय मानते हैं। आर्थिक क्षेत्र में भी समाज के तत्कालीन वातावरण के अनुरूप स्वार्थवृत्ति बहुत बढ़ गयी थी। हमारे समाजगत अनेक दोषों ने देश की सामाजिक शक्ति को पगु और मौलिक चिन्तन को कुण्ठित बना दिया। फलस्वरूप बारहवीं शताब्दी के अन्त मे हम दासता के जाल में आबद्ध हो गये। हमारी संस्कृति का स्वरूप परतन्त्रता वातावरण में विकृत हो गया। यद्यपि परतन्त्रता के इस दीर्घ काल में भी चैतन्य, कबीर, नानक, रामानुज, वल्लभ, निम्बार्क, मध्व, तुलसीदास, रामदास तुकाराम, दयानन्द, रामकृष्ण, विवेकानन्द, रामतीर्थ, अरविन्द, गाधी आदि विभूतियों ने समय-समय पर हमारा पथ-प्रदर्शन किया, परन्तु हम अपनी संस्कृति के प्राचीन उदात्त रूप को न लौटा सके।

अपने दीर्घ-कालीन इतिहास से हम बहुत कुछ पाठ ले सकते हैं। देश-काल की ओर ध्यान देते हुए हमें अपनी प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा की रक्षा करनी है। अच्छा हो यदि समय-समय पर कुछ ऐसे सांस्कृतिक सम्मेलनों का आयोजन किया जाय जिन मे सभी विचारधाराओं के लोग भाग ले सकें। हमें नीर-क्षीर विवेकी बुद्धि द्वारा उपयोगी वस्तु का ग्रहण एवं

बालक और पिता

श्री कुञ्जविहारी एम. ए.

बालक माँ के बाद पिता के ही सम्पर्क में आता है। पिता में कुछ ऐसी विशिष्ट बातें पाई जाती हैं जो माँ में नहीं होतीं। घर में पिता में सब से अधिक शक्ति पाई जाती है, उस की प्रतिष्ठा भी सब से अधिक है। लड़का पिता को इन सब गुणों का पुञ्ज मानता है।

बालक की दृष्टि में पिता— बालक का मस्तिष्क बहुत ही सक्रिय होता है परन्तु वह किसी वस्तु का वास्तविक मूल्य आंकने में असमर्थ रहता है। वह यह नहीं समझता कि कोई व्यक्ति गुण दोष दोनों का सम्मिश्रण भी हो सकता है। वह पिता को आरम्भ में गुणागार ही मानता है। कौन सा ऐसा कार्य है पिता न कर सकता हो। वह एक ऐसा सर्वशक्तिमान् सर्वसम्पन्न व्यक्ति है जिस के चारों ओर सभी वस्तुएं घूमती हैं। उस के लिए क्या नहीं उपलब्ध है? पिता जी सब से बड़े खिलाड़ी, सब से बड़े शारीरिक बल वाले, तथा महत्तम शरणागत पाल भी हैं। पिता जी बालक के लिए पूर्ण देवता हैं।

यह बात नहीं है कि बालक में केवल अच्छी ही भावनाएं पाई जाती हैं। अवगुणों की ओर भी उस का ध्यान रहता है परन्तु वह अवगुण और गुण को एक स्थान पर नहीं रखना जानता। उस के लिए पितृ-शक्ति या तो शुद्ध देवी है या शुद्ध राक्षसी। बालक को यही तो आगे चल कर सीखना है कि पिता में बुराई भी हो सकती है और उन के बावजूद भी वह अपना है और बड़ा है।

पिता की मनोवैज्ञानिकता— बालक अपने वातावरण में स्थिरता चाहता है। बार २ परिवर्तन उस के अनुकूल नहीं बैठता। पिता का इस स्थिरता में बड़ा हाथ रहता है। वह बड़ा ही क्रियाशील होता है। शक्तिपुञ्ज होने से बाह्य आपदाओं से घर की रक्षा करता है। उन आसुरी शक्तियों से जो मुंह फैलाये बाहर खड़ी रहती हैं, आप ही त्राण दिला पाता है। बच्चों के हृदय में उसके लिए फिर क्यों न अधिक सम्मान रहे। इसी कारण वे उनकी प्रशंसा के पुल बांधा करते हैं। बच्चे उन्हें हृदय से चाहते हैं। इस चाह में कुछ भय भी सम्मिलित है। बालक जानता है कि पिता की सहायता उस के बड़े काम की है, पथ प्रदर्शन के लिए भी वह उसी के पास जाता है।

पिता बालक की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है।

असार का त्याग करना होगा। वर्तमान अशांत वातावरण में तो संस्कृति के सच्चे सिद्धान्तों के प्रचार की बहुत आवश्यकता है। आशा है कि हमारा विद्वान् साधु वर्ग इस ओर प्रवृत्त होगा और अपने पूर्वज प्रचारकों से इस दिशा में प्रेरणा ग्रहण करेगा। यह सच है कि कुछ संस्थाएं इस ओर कार्य कर रही हैं, परन्तु अब अधिक व्यवस्थित रूप में इस काम का होना अपेक्षित है, अब ऐसे अनेक संगठनों की आवश्यकता है जो भारत के विभिन्न भागों में एवं विदेशों में लोगों को भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्वों का मर्म समझा सकें, जिस से विश्वशांति एवं सौहार्द की भावना में अभिवृद्धि हो। हमारे विद्यालयों में भी वास्तविक संस्कृति के अध्ययन-अध्यापन की नितांत आवश्यकता है, जिस से हमारे भावी नागरिक जीवन का सही उद्देश्य समझ सकें तथा अपने कर्तव्यों का ठीक प्रकार से निर्वाह कर सकें।

✱

उस के बिना वे सुखी नहीं रह सकते। उस के बिना उन के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। उस के अभाव में वे न केवल बाह्य नियन्त्रण से ही वञ्चित हो जाते हैं वरन् उन का स्वयं का आत्म-नियन्त्रण भी ढीला हो जाता है व्यक्तित्व निर्माण में 'अहं' भावना का बड़ा महत्त्व है। यह भावना धीरे २ समाज में पैदा होती है। बालक यह समझने लगता है कि 'मैं' और लोगों से भिन्न हूँ। यह भिन्नता की अनुभूति उस के जीवन-विकास का मुख्य सोपान है। धीरे २ मैं' में वह शक्ति भी आती है जो सारी प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं को एक ओर लगाती है। इन में किसी को विशृङ्खलित न होने देना उस इच्छा शक्ति का ही काम है जो 'मैं' की भावना के साथ ही विकसित होने लगती है।

अहं' की जो नियन्त्रक शक्ति है उस का भी प्रेरक अनजाने ही पिता बनता है। दृश्य वातावरण का नियन्त्रक तथा नियामक पिता धीरे २ सन्तान के अन्दर भी अनुकरण तथा निर्देश के कारण आंतरिक शक्ति जागृत करता है। पिता की भावना धीरे २ ऐसा आदर्श उपस्थित कर देती है जिस पर लड़का अपना जीवन ढाल सके। पिता के न रहने पर इस आदर्श का अभाव हो जाता है। यही कारण है कि पिता की अनुपस्थिति में लड़के को मनोवैज्ञानिक कष्ट पहुँचता है। उस का आन्तरिक अचेतन मन विचलित हो जाता है।

पिता के अभाव में लड़के की व्यथा—पिता के अभाव में लड़के में आत्मग्लानी भी पैदा हो सकती है। वह यह नहीं समझ पाता कि और लड़कों के तो पिता हैं उसके क्यों नहीं। पिता के विषय में बालक की बड़ी उत्कट जिज्ञासा होती है। ऐसी अनेक कहानियां हम सुनते हैं जिन में पिता के विषय में बालक माता से प्रश्न करता है। दैनिक जीवन में भी हम लड़कों को प्रकाश्य रूप से पिता के सम्बन्ध में जांच करते देखते हैं। उस के अभाव के विषय में वास्तविक ज्ञान न रखने के कारण उन के हृदय में यह विचार भी घुस सकता है कि शायद वे पिता पाने के योग्य नहीं हैं। उन में कुछ बुरी बातें हैं तभी तो वह नहीं है या कहीं चला गया है। ऐसी दशा में वह माँ के सम्बन्ध में भी बुराई सोचने लगता है। कदाचित् उसी के कारण पिता चले गये हों। माँ इस योग्य नहीं कि पति रख सके। धीरे २ उस के अचेतन मन में माँ के प्रति भी घृणा की भावना पैदा होती है। पिता के प्यार आश्रय, नियन्त्रण तथा उत्साह प्रदायक प्रेरणा से रहित बालक वास्तव में असहाय सा रहता है।

अनुचित (गैरकानूनी) ढंग से पैदा हुआ लड़का बहुत अधिक व्यथित रहता है। लोग उसे अपने पिता के सम्बन्ध में सच्ची बातें नहीं बताते। वह सदा एक आदर्श मूर्ति का स्वप्न देखा करता है जो शक्तिशाली प्रभाव सम्पन्न हो। ऐसा बालक प्राय घूमता हुआ दिखाई पड़ता है। उसे एक स्थान पर शान्ति नहीं मिल पाती।

पिता में बालक के अपनत्व की भावना काम करती है। वह उस से बात करता है, उस के प्रश्नों का उत्तर देता है। उसे बाजार घुमाता है। उस को आवश्यक वस्तुएं देता है। बालक यह नहीं सहन कर सकता कि पिता का प्रेम उस से किसी प्रकार हट जाय। पिता की अनुपस्थिति में उस के मन में अकेलेपन की व्यग्रता उठती है। लड़का इस चिन्ता में व्यस्त रहता है कि कहीं पिता न लौटे। प्राय देखा गया है कि इसे ५ साल तक के बालक पिता की

अनुपस्थिति को बहुत ही अधिक महसूस करते हैं। उन का ऐसा भावात्मक उद्रेक होता है कि स्नायुओं पर बड़ा ही जोर पड़ता है। आखिर बालक की शक्ति ही कितनी होती है? उस की भूख कम होने लगती है। रात्रि को बार २ उठा करता है अनिद्रा की सी बेचैनी रहने लगती है। अनेकों लड़के आवारों की भांति इधर उधर घूमने लगते हैं, अनेकों प्राय आवेश में आया करते हैं अनेकों प्रकार से अपने आत्मीय जनों की व्यग्रता बढ़ाते हैं ताकि लोग उन की ओर ध्यान दें।

पिता के मरने पर बालक या तो मां से अत्यधिक प्रेम करने लगते हैं और परावलम्बी से हो जाते हैं अथवा मां से भी अचेतन घृणा करने लगते हैं जैसा कि ऊपर लिखा गया है। मां चाहे कितनी ही प्यार करे परन्तु मन से वे स्वाभाविक नहीं हो पाते। उन में सुरक्षा तथा निश्चिन्तता नहीं आ पाती उन में आत्मतुष्टि का अभाव रहता है। कभी उन्हें अपनापन नहीं झलकता, वे दीन और दुःखी रहते हैं। ऐसों का भावी जीवन सुखमय नहीं हो पाता, उन के जीवन में भांति २ के कष्ट होते हैं। उन का व्यक्तित्व विशृङ्खल सा हो जाता है।

ऐसा नहीं है कि सभी लड़कों पर इस प्रकार का भीषण प्रभाव पड़े, कुछ लड़के इस शक्ति के बने होते हैं कि वे सारी आपदाओं को सह लेते हैं और धीरे २ उपयुक्त अवसर प्राप्त होने पर अपने व्यक्तित्व के विकास की ओर अग्रसर होते हैं परन्तु इन का प्रभाव पड़ता सभी के ऊपर है और अधिकांश के भावी जीवन को नष्ट करने में इन का बड़ा हाथ रहता है।

उदाहरण देखिये। विपिन के पिता बहुत ही कम अवस्था में काल-कवलित हो गए। माता अपनी इकलौती सन्तान पर सारा प्रेम रखती थी। परन्तु वह दुःखी थी। बालक वहां भी न रहा। वह अपने मामा के यहां आया और वहां पढ़ने लगा। वह था तो बड़ा कुशाग्र बुद्धि का परन्तु सदा बेचैन सा रहता था। बचपन से ही उस का पेट खराब होने लगा था। कोष्ठबद्धता उस के लिए स्वाभाविक बात हो गई। प्राय वह मामा के यहां से भाग २ कर अपने गांव पहुंचता। जीवन में भावात्मक मेल न बैठने के कारण उस ने बचपन में ही सुख का अन्य मार्ग ढूंढा। उस में लैंगिक दोष आने आरम्भ हुए। शरीर से और भी दुःखी रहने लगा। शिक्षा उस ने अच्छी ग्रहण कर ली परन्तु मां से उस का स्नेह न हो पाया जितना मां उस के प्रति रखती थी। जीवन में प्रवेश करने पर वह सुस्त, उदास अन्तर्मुखी हीन भावना-ग्रस्त रहता था। स्नायु दौर्बल्य से भी वह पीड़ित था। पेट की भीषण बीमारी से ग्रसित हुआ। औषधियों से ठीक हुआ परन्तु मानसिक बेचैनी उस की न गई। मनोविश्लेषण विधि से उस के बचपन का ग्रन्थि निकली। अब वह स्वस्थ और सुखी है।

श्याम घर में सर्वप्रिय बालक था। पिता को सैनिक कार्यों के कारण घर छोड़ना पड़ा। उस के बाद वह आवारा सा हो गया। गांव में घूमता और तरह २ की शरारतें करता था। मां को डांटता और कभी २ उसे मार भी दिया करता था। इस बीच में उस की माँ बीमार पड़ीं। पति के वियोग तथा लड़के के स्वभाव के कारण वह बहुत दुःखी रहती थी। अब तो लड़का और भी उद्धत हो गया। वह माँ की कोई चिन्ता न करता था। पाठशाला से प्राय लापता रहता। घर पर उस के चाचा

पाठशाला की अनुपस्थिति के कारण उसे डाटते थे इस कारण वह झूठ बोलना और बातें बनाना सीख गया। कभी २ वह सिर दर्द का बहाना बनाता, शारीरिक मानसिक भावात्मक क्रिया प्रतिक्रिया के कारण उसे सिर में पीड़ा होने लगी थी। अन्त में उस के पिता फौजी नौकरी से अलग हो कर आ गए। वही लड़का अब स्वाभाविक है। पाठशाला नियमित रूप से जाता है, घर के कामों में भी हाथ बटाता है, माँ के साथ उस का व्यवहार अच्छा है। अब वह अच्छे लड़कों में है।

पिता के कर्तव्य—इन परिस्थितियों में पिता के अपने कर्तव्य भी बहुत बड़े हैं। सन्तान की उत्पत्ति के लिए वह उत्तरदायी है, फिर उस के पालन-पोषण का भार भी उसे ही अपने सिर लेना है। क्या ही अच्छा हो यदि हृदय से वह अपने कर्तव्य का पालन करे। यदि पिता के रहते बच्चे की वह अवस्था पैदा हो जाय जैसा कि उस के अभाव में होती, तो सचमुच यह खेद और लज्जा की बात है। स्वयं विषय में लिप्त, स्त्री से अत्यधिक आसक्त घरेलू चिन्ताओं से व्यग्र पिता सन्तान को अपने रास्ते का काटा समझता है। हो सकता है कि बाह्य मन में ऐसी बात न हो पर उस का अप्रकट अचेतन मन लड़के की ओर से अप्रिय भावना रखता है। बालक के प्यार का उत्तर पिता प्रताड़ना से देता है, उस की जिज्ञासा की तृप्ति चपत से करता है और यदि बड़ी कृपा की तो माँ के पास ढकेल कर अपना पिण्ड छुड़ा लेता है। क्या बच्चे प्रेम का यही उत्तर है? क्या बालक आप से प्रेम नहीं करता? क्या वह आप के अपनी स्त्री के प्रेम का परिणाम नहीं है? बच्चे के प्रति इस प्रकार की उदासीनता तथा दुत्कार न केवल कृतघ्नता है वरन् देश और मानवता के प्रति एक खुला विद्रोह है।

यदि घर बाहर की दुनिया से भिन्न है, यदि आप ने इसे अपने सुख और शांति के लिए अपना बना रखा है तो बच्चे का ध्यान आप को अवश्य करना पड़ेगा। वह इस घर का एक अभिन्न अंग है। उस के बिना आप का घर अपूर्ण है। उस का सुख आप का सुख है तथा दुःख आप की परेशानी। क्या आप चाहेंगे कि लड़का आप की डांट फटकार के कारण दुःखी रहे, डरावने स्वप्न देखे और आप की दैवी मूर्ति को राक्षस की आकृति समझे? आप अपने लड़के के साथ ही साथ अपने स्वरूप को भी पहचानें। आप राष्ट्र के भावी नागरिक के निर्माता के रूप में हैं। मानवता का भी यही तकाज़ा है कि यदि औरों को नहीं तो कम से कम अपने बच्चों को तो सम्भालिए।

✶

नान्यः पन्था विद्यते अयनाय

अगर तुम अपनी प्राणगत वृत्तियों पर सच्चा प्रभुत्व प्राप्त करना चाहते हो और उन्हें रूपांतरित करना चाहते हो तो यह केवल तभी हो सकता है यदि तुम्हारा हृत्पुरुष, तुम्हारी अन्तरात्मा पूर्ण रूप से जाग जाय, अपना राज्य स्थापित कर ले और तुम्हारी सारी सत्ता को शक्ति के स्थायी स्पर्श की ओर खोल कर अपनी स्वाभाविक विशुद्ध भक्ति, अनन्य अभीप्सा और सभी भागवत वस्तुओं के प्रति होने वाले अपने अखण्ड एकनिष्ठ आवेग को तुम्हारे मन, हृदय और प्राण प्रकृति पर स्थापित कर दे। इस के अतिरिक्त दूसरा कोई पथ नहीं है और किसी अधिक सुगम मार्ग के लिए छटपटाने से कोई लाभ नहीं।

श्री अरविन्द।

मलय प्रायद्वीप के अभिलेख

डाक्टर एन० पी० चक्रवर्ती

बुकिट मरियाम के निकट खेडा में एक प्राचीन भवन में जो केवल १० फोट वर्ग के ही लगभग था, उस के भग्नावशेषों में से, कर्नल जेम्स लो को एक प्रकार की स्लेट जैसी सिल्ली मिली, जिस पर बौद्ध धर्म पद्धतिया खुदी हुई थीं। शायद यह छोटा सा भवन, जहा यह सिल्ली प्राप्त हुई किसी बौद्ध भिक्षु का झोपड़ा रहा होगा। श्री कर्ण का, जिन्होंने इस संस्कृत अभिलेख को पढ़ा, कहना है कि यह अभिलेख उस अन्य अभिलेख से पुराना नहीं हो सकता जिसे लो ने, वेलेजली प्रदेश के उत्तरी जिले में रेतीले भाग की ओर प्राचीन खण्डहरों को खुदाई करते समय प्राप्त किया था। खुदा हुआ पत्थर किसी स्तम्भ का टूटा हुआ ऊपरी भाग मालूम पड़ता है। इस की एक प्रति पर स्तूप के चिन्ह भी दिखते हैं। दोनों ओर एक पंक्ति लिखी है जिस पर वही दोहा है जो खेडा शिला पर। मीनार के किनारे के पास एक खण्डित अभिलेख है, जिस से पता चलता है कि यह समुद्र व्यापारी पावन बुद्ध गुप्त का जो रक्तमृत्तिका[1] नामक स्थान में रहता था, एक मन्दिर को दान करने का स्मारक था। लिखाई की दक्षिण भारतीय शैली, चम्पा और दक्षिणी जावा की और पल्लव प्रकार की लिपि से पूर्णतया मिलती है और इसी से कर्ण ने इस की अनुमानित तिथि ४०० ईस्वी निश्चित की है। कर्नल लो भी स्वय हाथी पर चढ़ कर चेराक तोकुम की ग्रेनेहिट चट्टान के ढालू भाग की ओर सात अभिलेखों की अनुकृति लेने गया। चेराक तोकुम वेलेजली प्रदेश के मध्य के पास वाले भाग में स्थित है। वे पुरातत्व में सम्मिलित होने के अतिरिक्त और किसी उपयोग के नहीं हैं क्योंकि वे बहुत छोटे और अस्पष्ट हैं। पहला तो ठीक बुद्ध गुप्त वाले अभिलेख जैसे अक्षरों में है। दूसरे के अक्षर कर्ण ने छठी शताब्दि से पूर्व के नहीं बताए, और जो पाश्चमी दक्खिन में पट्टदाकल के और भववमन के प्राचीन कम्बुज अभिलेखों जैसे हैं। कुछ बिखरी हुई मिट्टी की टिकिया खेडा में एक गुहा के फर्श के ६ फीट नीचे, १० वीं या ७ वीं शताब्दि ईस्वी की उत्तर भारतीय नागरी लिपि से लिखे, कुछ अभी तक बिना पढ़े अभिलेख भी मिले हैं। आग की पाच प्रतिज्ञात्मक टिकियों का सम्बन्ध महायान बौद्ध धर्म के चिन्हों से जोड़ा जा चुका है, जो ग्यारहवीं शताब्दि के पश्चिमी समूह की हैं, और जिस के अक्षर कर्णदेव के बनारस दानपत्र और कन्नौज के राठौडों के दानपत्रों के अक्षरों से मिलते हैं। दूसरी ओर बुद्ध और बोधिसत्व है।

सिहपुर नदी के मुख पर एक बड़ी उत्कीर्ण चट्टान मिली थी जिस के अक्षर पढ़े नहीं जा सके। न द में यह पाषाण जन निर्माण विभाग ने गिरवा दिया। इस के कुछ टुकड़े कलकत्ते भेजे गए। जो

[1] रक्तमृत्तिका—इस स्थान को शायद कर्णसुवर्ण (मुर्शिदाबाद) के रक्तमृत्तिका विहार' से मिलाया जा सकता है जिस का उल्लेख ह्यूनत्सांग ने 'लो-तो मो चिन्ह' कह कर किया। वाटर्स का अनुवाद 'रक्तमृत' अशुद्ध है। देखिये वाटर्स II पृ० १६२ और चटर्जी–कम्बुज में भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव—लेखक।

श्री बहादुर चन्द्र छाबड़ा ने भी इसे रागामाटी (रक्तमृत्तिका) ही माना है। प्रो० हेनरी कर्ण ने इस की पहिचान स्याम की खाड़ी में चिन्तु बन्दरगाह से की थी, जो अशुद्ध है। देखिये 'इतिहास', बृहत्तर भारत अंक में छाबड़ा जी का लेख 'सुदूरपूर्व में भारतीय उपनिवेश'—अनु०।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान और भारतीय विचारधारा

डा० सुरेन्द्रनाथ गुप्ता, एम. बी. बी. एस.

[पिछले अङ्क से]

सभ्यता का उदय

मानव समाज की यह दशा लाखों वर्ष तक रही होगी। फिर मनुष्य ने भाषा और लिपि का आविष्कार किया और तब मानव सभ्यता का आविर्भाव हुआ। अब वह अपने अनुभवों और विचारों को लिपिबद्ध करने लगा। मनुष्य की सब से पुरानी पुस्तकें चिकित्सा विज्ञान सम्बन्धी ही है।

सर्वप्रथम मानव सभ्यता का उदय नदियों की घाटियों के रम्य और उपजाऊ प्रदेशों में हुआ। इस प्रकार सप्तसिन्धु की पवित्र भूमि भारत, नील की घाटी मिश्र, बेबिलोनिया तथा चीन में सभ्यता का उदय हुआ।

चिकित्सा विज्ञान की सब से पहली पुस्तकें

सप्तसिन्धु की पवित्र भूमि में आर्य ऋषियों द्वारा सभ्यता का उत्कर्ष होने लगा, और तब आज से पाच हजार वर्ष पूर्व वेदों की ऋचायें उत्तर भारत की नदियों की उपत्यकाओं में गूञ्जने लगीं। ऋगवेद में स्थान स्थान पर चिकित्सा सम्बन्धी तत्कालीन अवस्था का परिचय मिलता है।

इसी प्रकार मिश्र में १५०० ई० पूर्व काल की कुछ पुस्तकें मिली हैं। ये भोजपत्र पर लिखी हुई हैं। इन में 'ईबस पेपिरस' नामक पुस्तक सब से पुरानी और प्रमुख है। इस में तत्कालीन अनुभवों पर आधारित चिकित्सा विज्ञान सम्बन्धी अनेक बातें सग्रहीत

अभी तक ज्ञात हो सका वह इस प्रकार है कि इस की लिपि वह है जो चौदहवीं शताब्दी के मध्य में मजपहित राज्य में प्रयोग की जाती थी।

क्योंकि इन बाद के अभिलेखों का पता नहीं चलता इन के मूलपाठ को यहा देना सम्भव नहीं है।

यहा सभी अभिलेख मलय प्रायद्वीप के पश्चिमी तट की ओर मिले हैं। परन्तु चौथी शताब्दी में पुरालिपि के अवशेष पूर्वी तट पर मिलते हैं। (देखिये फिनोट—बुलेटीन कुमे-मारेक १९१० पृष्ठ १४२–१५४)।

१. खेडा अभिलेख

ये धर्मा हेतुप्रभवा तेषा (ं) तथागतो (ह्यवदत्?)।
तेषा (ं) च यो निरोध एव(ं)वादी महाश्रमण(:)॥
अज्ञानाच्चीयते कर्म जन्मद (:) कर्मकारणम्।
ज्ञानान्न क्रियते कर्म्म कर्माभावान्न जायते॥

अर्थात् ये नियम (धर्म) कारण से ही उत्पन्न होते हैं, ऐसा तथागत ने कहा है; और इन के निरोध का उपाय क्या है, यह भी इस प्रकार महाश्रमण ने कहा है।

अज्ञान से कर्म्म सञ्चय होता है, और कर्म्म जन्म (पुनर्जन्म) का कारण है। ज्ञान से कर्म्म नहीं रहता, और कर्म्म के अभाव से जन्म नहीं होता।

ऊपर की दो पङ्क्तियों में से पहली बौद्ध-धर्म में पर्याप्त प्रसिद्ध है।

२. उत्तर वलेजली प्रदेश का अभिलेख

इस अभिलेख में खेडा अभिलेख की पुनरावृत्ति है और अन्त में निम्नपंक्ति और है—

महानाविक (स्य) बुद्धगुप्तस्य रक्तमृत्तिकावास
(स्य?)……(दानम ?)

अर्थात् रक्तमृत्तिका निवासी महानाविक बुद्ध गुप्त का (दान)।

अनुवादक—बाबूराम वर्मा।

★

हैं। इन में से कुछ बातें तो इतनी वैज्ञानिक हैं कि आज भी वे अपने उसी रूप में प्रयुक्त हो रही हैं, और बहुत सी बातें गलत और हास्यास्पद भी हैं। चीन में ईसा से ३००० वर्ष पूर्व शेन नग' नामक शासक ने 'पेनत्साओ' पुस्तक लिखी थी। इस में १००० से भी अधिक औषधि द्रव्यों का विवेचन किया गया है। इस प्रकार विज्ञान सम्बन्धी सवप्रथम पुस्तकें इन्हीं तीन देशों में लिखीं गई।

आयुर्वेद का उत्कर्ष

इस प्रकार इन स्थानों पर सभ्यता का उदय हुआ। भारतवर्ष जगद्गुरु का आसन प्राप्त करने के लिए द्रुतगति से आगे बढ़ने लगा। धर्म, समाज, व्यक्ति, राज्य और वाणिज्य के साथ-साथ चिकित्सा शास्त्र की उन्नति होने लगी। धीरे धीरे यह ज्ञान इतना विशाल होता गया कि अब इसे एक अलग नाम से अलंकृत किया गया, और इसे आयुर्वेद कहने लगे।

अब मनुष्य निरीक्षण और अनुभव के युग से आगे बढ़ने के लिए मचल पड़ा। मीठे आम का स्वाद तो उसे मिल ही चुका था परन्तु अब वह यह भी जानना चाहता था आखिर लाल आम मीठा होता ही क्यों है और तब ससार में पहली बार रोगों की उत्पत्ति और उन की चिकित्सा के बारे में क्या, क्यों और कैसे के उत्तर देने के प्रयत्न किये जाने लगे। सब से पहले यह महान् प्रयास भारतवर्ष में ही हुआ। और इन प्रश्नों के उत्तर देने के लिए 'त्रिदोष सिद्धात' की उत्पत्ति हुई। इस सिद्धात को कहा, कब और किसने जन्म दिया यह तो ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता, परन्तु निश्चय ही इस का अभ्युदय आयुर्वेद के प्रारम्भिक काल में ही हुआ होगा।

त्रिदोष सिद्धात

इसी सिद्धात के अनुसार शरीर में तीन वस्तुओं की उपस्थिति मानी गई है। इन्हें 'वायु', 'पित्त', और 'कफ' कहा गया। इन के सन्तुलित परिणाम में उपस्थित रहने पर शरीर स्वस्थ रहता है। जब इनका सन्तुलन बिगड़ जाता है तभी रोग उत्पन्न होते हैं, और तब इन को 'दोष' कहा जाता है। रोगों के लक्षण इन दोषों के पारस्परिक न्यूनाधिक्य पर निर्भर करते हैं। प्रत्येक दोष को विशेष गुणों से अलंकृत किया गया। जब जो दोष प्रकुपित होता तब उसी के अनुसार लक्षण भी प्रगट होते हैं। विशेष अवस्थाओं और ऋतुओं के अनुसार कब किस की प्रधानता होती है, और कब किस का शमन होता है यह भी बताया गया। व्यक्ति के आहार विहार का इन के सन्तुलन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस की भी बड़े विस्तार के साथ विवेचना की गई।

इसी सिद्धात के आधार पर रोगों का वर्गीकरण भी किया गया। कफ की प्रबलता से उत्पन्न होने वाले लक्षणों को कफज कहा गया, इसी प्रकार वायु और पित्त के कुपित होने पर वातज और पित्तज रोगों की उत्पत्ति मानी गई।

तब यह स्वाभाविक था कि कफज कहे जाने वाले लक्षणों में जो द्रव्य लाभ करते थे उन्हें कफ के शमन करने का गुण प्रदान किया जावे। इसी प्रकार विभिन्न भैषज्य द्रव्यों में भिन्न भिन्न गुण बताये गये, और तभी रोगों के वर्गीकरण के साथ साथ भैषज्य द्रव्यों का वर्गीकरण भी इसी सिद्धात के आधार पर किया गया। और क्योंकि अधिकाश बातें सही अनुभवों पर आधारित थीं इस लिए बड़ी आसानी और खूबी से इस सिद्धात में खप गई इस प्रकार बड़ी कुशलता के साथ चूल से चूल मिला दी गई। आम तो मीठा था ही, अब जनता को उसका कारण बताने का प्रयत्न भी किया गया।

इस प्रकार आयुर्वेद के आधारभूत त्रिदोष सिद्धांत की नींव पड़ी। आयुर्वेद के इन अज्ञात आदि गुरुओं के विवेक और व्यंजना की कल्पना कर के आज भी दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है। फिर धीरे धीरे इस का विकास और वृद्धि होने लगी। ईसा से ७०० वर्ष पूर्वकाल में आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थ लिखे गये, जिन का कोई प्रामाणिक इतिहास आज उपलब्ध नहीं है और न उस समय के आदि गुरुओं के विषय में ही हम अधिक कुछ जानते हैं।

इस के बाद आयुर्वेद की द्रुतगति से उन्नति हुई। इस के अन्तर्गत अष्टांग चिकित्सा की विशद व्यवस्था हुई। भिन्न विभागों का सुव्यवस्थित संगठन किया गया। औषधि निर्माण और रसायन में विशेष उन्नति हुई। धीरे धीरे शल्यकर्म तथा शल्य चिकित्सा का रूप भी बहुत विस्तृत और उन्नत होता गया। वास्तव में तब समस्त विश्व में चिकित्सा विज्ञान का चरमोत्कर्ष आयुर्वेद ही था। खेद का विषय है कि आज हमें अपने पूर्वजों के उस गौरवशाली युग का शृङ्खलाबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है। चरक तथा सुश्रुत संहितायें आदि ही हमें आयुर्वेद के स्फुट अंगों का ही परिचय देते हैं। इन्हीं से तत्कालीन आयुर्वेद की विशाल महत्ता का अनुमान किया जा सकता है। चरक का समय ईसा से कुछ बाद ही अनुमान किया जाता है। सुश्रुत ईसा के बाद पाचवीं शताब्दी में हुआ था। इस समय तक आयुर्वेद महान उन्नति कर चुका था।

सभ्यता की अन्य जन्मस्थलियों में चिकित्सा विज्ञान का अभ्युदय

जिस समय भारतवर्ष में आयुर्वेद उन्नति कर रहा था तभी चीन तथा यूनान में भी तत्सम्बन्धी नये सिद्धांतों का उदय हो रहा था। चीन और यूनान के सिद्धांत आयुर्वेद के त्रिदोष सिद्धांत से इतने मिलते जुलते हैं कि सहसा यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि वे स्वतन्त्र रूप से विकसित हुये हैं। अवश्य ही उन पर भारतीय त्रिदोष सिद्धान्त की छाप है, यह कब और कैसे लगी, ऐतिहासिक शोध का विषय है।

चीन का सिद्धांत

चीनियों के अनुसार दो प्रधान वस्तुयें मानी गई। इन के नाम थे 'यांग' और 'यिन'। ये परस्पर विरोधी गुण सम्पन्न मानी गई, और कहा गया कि इन के सन्तुलन से स्वास्थ्य ठीक रहता है और असन्तुलन से दोषों की उत्पत्ति होती है। चीनियों ने शरीर की रचना पञ्चतत्वों से मानी थी। उनके ये पञ्चतत्व पृथ्वी, अग्नि, जल, काष्ठ तथा धातु थे।

यूनान और रोम में

प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक और इतिहासकार हीरोडोटस के कथनानुसार भारत, पर्शिया, बेबिलोन तथा मिश्र से ज्ञान ज्योति यूनान पहुँची। यूनानियों ने अपने देश और साम्राज्य में इस की खूब उन्नति की। लगभग ५०० वर्ष ईसा पूर्व के यूनानी दार्शनिकों ने इस विज्ञान को पुराने अन्य विश्वासों से हटा कर नई दिशा दिखाई। इस प्रसंग में पाइथेगोरस का (५८०–४६८ वर्ष ईसा पूर्व) नाम उल्लेखनीय है। पाइथेगोरस के शिष्य एलकिमियन (५०२ वर्ष ईसा पूर्व) के अनुसार रोगों की उत्पत्ति शरीर में उपस्थित तत्वों के असन्तुलन के कारण उत्पन्न होती है, और इन के समुचित सन्तुलन से शरीर स्वस्थ रहता है। सिसली के एम्पीडोकल्स (५०४–४४३ वर्ष ईसा पूर्व) ने विश्व तथा विश्व की तमाम वस्तुओं की उत्पत्ति चार तत्वों से बताई, और इन के नाम अग्नि, वायु, पृथ्वी तथा जल रखे। आगे चल कर इसी सिद्धांत पर यूनानी सिद्धांत की उत्पत्ति हुई। इन सब पर भारतीयता की छाप स्पष्ट है।

इस प्रसंग में हिप्पोक्रेटीज़ का उल्लेख भी आव-

श्यक है। भारत के आदि गुरुओं के इतिहास की अनुपस्थिति में आधुनिक पाश्चात्य इतिहासकार हिप्पोक्रेटीज़ को चिकित्सा विज्ञान का पिता मानते हैं। हिप्पोक्रेटीज़ का जन्म ईसा से ४७० वर्ष पूर्व हुआ था और वह लगभग १०५ वर्ष की अवस्था तक जीवित रहा। उस की रोगों और लक्षणों के निरीक्षण करने की प्रतिभा बहुत तीव्र थी, तर्क पूर्णतः वैज्ञानिक थे और उस के वर्णन बिलकुल सीधे और सच्चे होते थे। वह रोगों की उत्पत्ति उन के स्वाभाविक कारणों से मानता था। रोगों के अच्छा होने में प्रकृति की सहायता प्रधान मानता था। इस प्रकार भारत से गई हुई ज्ञान ज्योति हिप्पोक्रेटीज़ और उस के अनुयाइयों के हाथ में प्रखर प्रकाशपुञ्ज बन कर प्रदीप्त हुई।

हिप्पोक्रेटीज़ के नाम के साथ-साथ एक और नाम उल्लेखनीय है गेलन। गेलन (१३१–२०० ई०) का जन्म एशिया माइनर में और उस की शिक्षा इस्मरना में और सिकन्दरिया में हुई थी। लगभग ३२ वर्ष की अवस्था में वह रोम में प्रैक्टिस करने के लिए आ गया था।

गेलन का सिद्धांत

गेलन के अनुसार शरीर में चार पदार्थ हैं, रक्त, कफ, पीला पित्त, और काला पित्त। उस ने इन के अलग गुण बताये और कहा कि रोगों की उत्पत्ति इन के विषम सन्तुलन के कारण होती है। रोग के लक्षण इन पदार्थों के पारस्परिक अनुपात और न्यूनाधिक्य पर निर्भर करते हैं।

गेलन का सिद्धात भारतीय त्रिदोष सिद्धात का रूपान्तर भाव था। गेलन के उपरात लगभग १५०० वर्ष तक चिकित्सा क्षेत्र में उसका प्रभुत्व स्थापित रहा। हिप्पोक्रेटीज के विचारों का तत्कालीन जनसाधारण में उतना स्वागत नहीं हुआ, क्योंकि उस के विचार अपने समय से बहुत आगे थे। अन्धविश्वास के उस युग में लकीर के फकीर को हिप्पोक्रेटीज ग्राह्य न था। अन्धविश्वासों के प्रति उसका अविश्वास और उसके विचारों की मौलिकता तत्कालीन बुद्धि के परे थी।

आयुर्वेद का उत्थान और अवरोध

ईसा से १००० वर्ष पूर्व अपने जन्म के समय से ले कर १००० ई० तक लगभग २००० वर्ष आयुर्वेद निरन्तर उन्नत होता रहा।

ईसा से ३२६ वर्ष पूर्व मौर्यकाल में भारत पर सिकन्दर महान् का आक्रमण हुआ, और यूनान तथा भारत में एक बार फिर परस्पर, विभिन्न ज्ञान विज्ञानों का आदान प्रदान हुआ। ३२० से ८०० ई० तक भारत में गुप्तवंश का राज्य रहा। यह काल भारतवर्ष के इतिहास का स्वर्णयुग कहा जाता है। इस समय आयुर्वेद अपने चरमोत्कर्ष पर था। चीनी यात्री फाह्यान (४०५ से ४११ ई०) ने तत्कालीन दशा का बड़ा अच्छा वर्णन किया है।

हर्ष की मृत्यु के बाद से भारत के भाग्य में अवरोध आ गया। ईसा की सातवीं शताब्दी से ले कर बारहवीं शताब्दी तक राजपूतों का राज्य रहा। बारहवीं शताब्दी से ले कर सत्रहवीं शताब्दी तक भारत पर विभिन्न मुस्लिम वंशों का राज्य रहा। इन १००० वर्षों में भारत का समस्त ज्ञान और विद्या इन लुटेरों के कारण कुण्ठित ही नहीं पड़ी रही, अपितु बड़ी तीव्र गति से उसका ह्रास होता गया।

(असमाप्त)

वर्तनों पर कलई चढ़ाने का इतिहास

सन् १३०० से १९०० ई० के मध्य में

श्री पी. के. गोडे[1]

अनुवादक—श्री सत्यव्रत वेदालंकार, एम. ए.

भारतीय आहार द्रव्यों के अध्ययन के साथ-साथ भारतीय घरों में काम आने वाले पकाने के एवं अन्य घरेलू बर्तनों के इतिहास का भी अध्ययन करने का मेरा प्रयत्न रहा है। इस सम्बन्ध में मेरे अनेक मित्रों ने मुझे बताया था कि पीतल और तांबे के बर्तनों एवं रकाबियों पर कलई चढ़ाने की प्रथा अब भी भारत के अनेक प्रदेशों में प्रचलित है। पीतल और तांबे के बर्तनों में खट्टे और अम्लीय पदार्थ रखे रहने पर उन की पीतल या तांबे पर रासायनिक क्रिया हो जाती है। इन बर्तनों पर कलई कर देने से यह क्रिया एकदम रुकती न भी हो तो भी कलई करने से यह कम अवश्य हो जाती है। कलई चढ़ाने का पेशा करने वाले लोग 'कलई वाले'[2] कहलाते हैं। कुछ की तो शहर में अपनी निश्चित दुकानें भी होतीं हैं, परन्तु कुछ लोग घर घर फिरते हैं और वहीं अपने औजारों और सामान की सहायता से कलई चढ़ा देते हैं। वे लोग अपना सामान अपने साथ रखते हैं।

साधारण छोटे बड़े विभिन्न प्रकार के बर्तनों पर कलई करने के लिए भाव सामान्यतया प्रति सैंकड़ा (सौ बर्तनों के लिये) तय किया जाता है।[3]

कल्हई के लिए मुझे कोई संस्कृत शब्द नहीं मिला है परन्तु के. पी. कुलकर्णी ने अपने 'मराठी व्युत्पत्तिकोष' (बम्बई १९४६ पृ० १४६) में कल्हई के विषय में इस प्रकार लिखा है—

कल्हई स्त्री. कथिलाचा मुलामा; भांड्याची चिल्हाई सावरा सावर (लक्षणा)—कल्हई= पकाने के बर्तनों पर कलई का लेप (या मुलम्मा)।

[सं०—कलधौत प्रा०—कलहोय (सुवर्ण, चांदी); अर०—कल्हई=कथील; पेकाम कलई (रा० १२. १४२)]

इस में प्रो० कुलकर्णी ने संस्कृत 'कलधौत' का अरबी 'कल्हई' और प्राकृत कलहोय से सम्बन्ध दिखाया है, पर क्या कोई संस्कृत या प्राकृत विद्वान् ऐतिहासिक दृष्टि से इन के सम्बन्ध को सिद्ध कर सकता है?

अपने शब्दकोष में पृष्ठ १३३ पर प्रोफेसर कुलकर्णी कथील (=टिन) शब्द के लिए इस प्रकार

---

२ बौम्बे गजेटियर में कलईगर नामक एक मुस्लिम जाति का कलई करने वाले कारीगरों के रूप में वर्णन है। ये लोग अहमद नगर, पूना, सातारा, शोलापुर, बेलगाव, धारवाड़, बीजापुर और नासिक आदि के जिलों में कलई किया करते थे। [सन् १४०४ पृष्ठ १८० बौम्बे गजेटीयर, बौम्बे की इन्डेक्स में देखिये]

१ अन्वेषक विद्वान्। भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट के क्यूरेटर।

३ (यूल और बर्नल द्वारा, लन्दन १९०३, पृष्ठ १४५-१४६) हौब्सन जौब्सन में 'कलई' नामक एक लेख में सन् ६२० से १७६५ तक के काल में कलई के विषय में कई संकेत हैं, परन्तु उनका अभिप्राय बर्तनों पर कलई चढ़ाने से नहीं है। इन संकेतों में कलई के लिए ये नाम आये हैं—अल-कलई, केलेम, केलैम, कलयन, केलिन, केलम, कलयम, केलैन, कलिन, केलिन।

लिखते हैं—

'कथील' न एक खनिज धातु (टिन=कलई)
स० कस्तीर (कस्तीर रङ्गमिति हेमचन्द्र)
अप-कत्थील, अकाम० कथली=कथिल चें भ हैं।

दाते और कर्वे द्वारा लिखित मराठी शब्दकोष' में (भाग २ के पृष्ठ ६२६ पर) कल्हई शब्द अरबी कलई (=कथील) शब्द से निकाला गया है और उस में राजवाडे की 'मराठा इतिहास के मूल स्रोत' नामक पुस्तक मराठी पुस्तक (खण्ड १२, न० १४२) से कलई शब्द को इस प्रकार उद्धृत किया गया है—

'आरसे आहेल ज्याची कल्हई उडाली असेल इत्यादि' परन्तु इस प्रयोग में कल्हई शब्द का अभिप्राय कलई चढ़ाना नहीं है किन्तु यहा पारा चढ़ाने का वर्णन है, जो कि दर्पणों पर चढ़ाया जाता था। उस ही शब्दोष में ये शब्द भी मिलते हैं—कल्हईकर, कल्हईगर या कल्हईगार—जो कि उन लोगों के लिए प्रयुक्त किये गये हैं जो कि घरेलू बर्तनों पर या कलई चढ़ाने का धन्धा करते थे। इस में कथील शब्द की भी व्याख्या है (पृ० ५७२), और उस का सम्बन्ध सस्कृत कस्तीर और अपभ्रंश कत्थील (=कथील) से बताया गया है।

राजधर्मकोष (सन् १६७६) (पूना १८८०) में कथिल और कल्हैकर शब्द निम्नलिखित श्लोक में मिलते हैं—

पृष्ठ ५' ·· कथिल वङ्गमुच्यते ' ॥ ५५ ॥
पृष्ठ ३१ 'कल्हैकरः सीसकारा मुलामा धातुवर्जनम्'
(श्लोक ३७८)

मैं नहीं कह सकता कि उपर्युक्त पंक्ति में कल्हैकर को सीसकार क्यों कहा गया है। सम्भवत· शिवाजी के समय के कल्हई वाले न केवल टिन की ही कलई चढ़ाया करते थे पर सीसे की भी कलई वे किया करते थे।

पारसी शब्दों का कोष पारसीभाषानुशासन जिसे विक्रमसिंह ने लिखा था (जो सम्पादक श्री बनारसीदास जैन के अनुसार सम्वत् १६०० अर्थात् सन् १८४४ ई० से पहले का है वह) सन् १९४५ में प्रकाशित हुआ था। इस शब्द कोष के द्वितीय प्रकरण के निम्नलिखित चतुर्थ श्लोक में (पृष्ठ १३ पर) मुझे कलैय (टिन) शब्द मिला है—

ताम्रं मिसि स्यात् त्रपुक कलैय
मर्वानुप्रवाल मुहराइ मारः।
मणिश्च या कूतु च नीलमु स्याद्
रावेहका लाजुवुदु प्रसिद्धा ॥ ४ ॥

---

१ रघुनाथ पण्डित के राजव्यवहारकोष (सन् १६७६) [पूना, १८८०, पृ०] में कथील शब्द मिलता है, जहा धातुओं के लिए कुछ शब्द इस प्रकार लिखे हैं—

'रौप्य रूपा तथा ताम्र ताबा पित्तलकम् पितलु॥५४॥
स्यात् सगवसरि धातुविशेष सरकामिधः ॥
कासे कास्य सिसे सीस कथिल वङ्गमुच्यते ॥५४॥
कालायस तु पोलादः स्याल्लोहमुभयोः समम् ॥'

मराठ' कवि मोरोपन्त (ए० डी० १७२६–१७६४) अपनी निम्नलिखित पंक्ति में कथील शब्द लिखता है—

'कृष्णाश्रितें कराची चिंता न, जशी रसाश्रितें कथिलें'

[भो० भीष्मपर्व ११. ४७, दाते और कर्वे द्वारा लिखित शब्दकोष (पूना,भाग २, १६३३) के पृष्ठ ५७२ पर]

भारतीय ग्रन्थों में 'क्लैय' शब्द के विषय में सब से प्राचीन सकेत जो मुझे मिला है वह यही है। तथापि इस का अर्थ कलई (=टिन) है न कि कलई चढ़ाना (टिन—कोटिंग)। इस निबन्ध में कलई चढ़ ने का इतिहास ही मेरा प्रयोजन है।

राजव्यवहार कोष में 'कलइईकर' (वह व्यक्ति जो कलई चढ़ाने का पेशा करता था) की ओर सकेत स्पष्ट सिद्ध करता है कि किस प्रकार १७ वीं शताब्दी मे भारतवर्ष में कलई चढ़ाना भली भाति प्रचलित हो चुका था अपने इस परिणाम की पुष्टि में सस्कृत के और सस्कृत भिन्न भी अनेक अतिरिक्त प्रमाण हमें मिल जाते हैं:—

बी. एन. नाथ ने मद्रास में सन् १९२७ ई० में शिवतत्वरत्नाकर नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया था। इस के रचयिता इक्केरी के राजा (१६६८–१७१५ ई०) केलाडीबसव थे। यह ग्रन्थ सास्कृतिक सस्कृत छन्दशास्त्र का एक विश्वकोष सा है। इस के सूप-शास्त्र वाले [पकाना=पाचन सम्बन्धी] अध्याय में कलाय-लेप [या टिन कोटिंग] का वर्णन है। छठे कल्लोल में १८ वीं तरङ्ग का १३ वा श्लोक इस प्रकार है [पृष्ठ २१५ पर]—

'रूप्यपात्रे पचेदन्नं श्लेष्मपित्तामयापहम्।
कलायलेपिते पात्रे पचेदन्नं सुशीतलम् ॥१३॥'

इस श्लोक में पकाने के लिए स्पष्ट रूप से कलई चढ़े हुए बर्तन का विधान किया गया है। इस श्लोक में प्रयुक्त 'कलाय' शब्द कोई सस्कृत शब्द नहीं है, परन्तु यह टिन के लिए एक अरबी शब्द है, जिस का केलाडीबसव ने थोड़ा सा सस्कृतीकरण कर दिया है।

हिन्दू कवि सूरदास [१४८३—१५६३ ई०] ने भी कलई का वर्णन किया है जैसा कि मुझे अपने भाषा विज्ञानी मित्र डा० सिद्धेश्वर वर्मा[1] [नागपुर द्वारा उनके २६-८-४६ के पत्र से ज्ञात हुआ है, उस में इस प्रकार लिखा है—

'कल्हई के सम्बन्ध में एकमात्र सामग्री जो कि आपको तुरन्त मिल सकती है, वह सूरदास की एक पंक्ति है, जिसे हिन्दी शब्द सागर प्रथम भाग [१९१६] के कलई प्रकरण में उद्धृत किया गया है। वह पंक्ति इस प्रकार है—

'आई उघरी प्रीति कलई सी जैसी खाटी आमी'
उस शब्द कोष में 'कलई' का अर्थ 'रागा' किया है, और रांगे का अर्थ 'भागवस्टैण्डर्ड इलस्ट्रेटेड डिक्शनरी ऑफ दी हिन्दी लैंग्वेज' में 'टिन' किया गया है, जब कि कलई' का अर्थ इस में किसी पदार्थ पर टिन का पतला लेप' किया है। बादशाह अकबर की रसोई का अबुलफजल ने अपनी आइने अकबरी में विस्तृत वर्णन किया है [ग्लैड विन कृत अंग्रेजी अनुवाद प्रथम भाग कलकत्ता १८६७, के पृ० ४९-५१ पर]। अकबर की मेज पर भोजन, सोने, चादी, पत्थर और चीनी की विभिन्न तश्तरियों में परोसा जाता था। उसकी रसोई का वर्णन करते हुए अपने अन्तिम निम्नलिखित वाक्यो में उस ने रसोई के तांबे के बर्तनों पर भी कलई चढ़े होने का वर्णन किया है [पृ० ५१]— 'महाराज के प्रयोग के लिए तांबे के बर्तनों पर एक महीने में दो बार कलई चढ़वाई जाती है, परन्तु राज-कुमारों एव अन्त पुर निवासियों के लिए महीने में एक बार कलई होती है। जो कोई भी तांबे के बर्तन टूट जाते हैं वे ठठेरों को दे दिये जाते हैं। वे दूसरे बर्तन बना देते हैं।'

[1] न केवल यह। उद्धरण परन्तु इसके अतिरिक्त अपने अध्ययन से सम्बन्धित अपनी अनेक जिज्ञासाओं का निरन्तर और तुरन्त उत्तर वे मुझे देते रहे हैं। इस सबके लिए मैंने डाक्टर वर्मा साहब के प्रति अपने गहरे कृतज्ञता के भाव को प्रकट करने का यह अच्छा अवसर समझा है। [अपूर्ण]

इन्द्र सूक्त

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

ऋग्वेद के दूसरे मण्डल के १२ व सूक्त का नाम इ द्र सूक्त है। वह सूक्त न केवल ससार के सब से प्राचीन समाज के राष्ट्रीय जीवन का समझने के लिए उपयोगी है, राष्ट्र की वतमान समस्य ओं को सुलझ ने के लिए भी बहुत उपयोगी हो सकता है।

इस सूक्त के १४ मन्त्रों का अन्तिम पद है स ज नास इन्द्र हे मनुष्यो, वह इ द्र है— अर्थात् इन्द्र' इस उपाधि के योग्य है।

इस सूक्त के तात्पर्य को भली प्रकार समझने के लिए सब से आवश्यक बात यह है कि हम यह समझें कि यहा 'इन्द्र' शब्द का क्या अर्थ है?

सस्कृत में इन्द्र शब्द के अनेक अर्थ हैं। ईश्वर, सूय राजा और अग्रणी—इन तथा अन्य अनेक ऐश्वर्य शाली वस्तुओं के लिए इन्द्र शब्द का प्रयोग होता है। कहा इस शब्द का कौन सा अथ लिया जाय, यह प्रकरण को देख कर ही निश्चय हा सकता है। जैसे—ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग'

निश्चय से वह इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यशाली ईश्वर अप्रतिष्कृत अद्वितीय-है, कोई दूसरा उस के बराबर नहीं।

प्रस्तुत इन्द्र सूक्त में इन्द्र शब्द से प्रजा के अग्रणी, नेता तथा प्रमुख सेनापति का ग्रहण होता है। यहा इन्द्र शब्द का वही अर्थ है, जो कि राजेन्द्र कवीन्द्र मानवेन्द्र आदि में है। जैसे राजाओं में सब से बड़ा राजेन्द्र, कवियों में सब से बड़ा कवीन्द्र और मनुष्यों में सब से बड़ा मानवेन्द्र कहलाता है। परन्तु जब हम किसी ऐसे व्यक्ति की चर्चा करना चाहते हैं, जो सब मिला कर साधारण व्यक्तियों से बहुत बड़ा हो, तब उसे केवल 'इन्द्र' इतना नाम दिया जाता है।

इन्द्र सूक्त में मनुष्यों को यह बतलाया गया है कि तुम अपने इन्द्र अर्थात् नेता अग्रणी या राष्ट्रपति के से व्यक्ति को चुनो। जहा जन्म से ही राजा का बेटा राजा बन जाता हो, वहा ऋग्वेद के इस सूक्त का कोई उपयोग नहीं, वहा ता राजकुल से शेर या गदभ जिस ने भी जन्म ले लिय, वही राजा हो जायगा परन्तु राष्ट्र को अपना अग्रणी चुनना है, उसे जानना चाहिए कि वह अग्रणी कैसा हा? ऐसी कौन सी विशेषताए हैं, जिन के बिना किसी को इन्द्र के पद पर नहीं बिठाया जा सकता।

इसी सूक्त के पहले चौदह मन्त्रों में चुने जाने व ले अग्रणी या राष्ट्रपति के गुण बतलाए गए हैं और अन्तिम मन्त्र में 'जनता' उस के साथ कैसी प्रतिज्ञा करे, यह बतलाया गया है, इस प्रकार यह सूक्त किसी राष्ट्र नायक की चुनाव की इतिकर्तव्यता बतलाता है।

सूक्त में इन्द्र अर्थात् राष्ट्र नायक के गुणों और विशेषताओं का बहुत सुन्दर भाषा में वणन किया गया है वेद को काव्य कहा गया है उसके वर्णनों में कवित्व की शाभा ओतप्रोत है।

पहला मन्त्र है—

> यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो
> देवान्क्रतुना पर्यभूषत्
> यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेता
> नृम्णस्य मन्हा स जनास इन्द्र [१]

जो अत्यन्त तेजस्वी और विचारवान नेता अपने अपने पद पर आरूढ होते ही लोकहितकारी कार्यों से देश की सुख समृद्धि को बढ़ाने की शक्ति रखता हो, और जिसकी शक्ति से पृथ्वी और अन्तरिक्ष के निवासी नियन्त्रण में रहें, हे राष्ट्र जनो, वही अपने मनुष्योचित गुणों के कारण तुम्हारा-इन्द्र-अग्रणी

होने के योग्य है।

आगे चल कर ऋग्वेद में बतलाया गया है।

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य
यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः
युक्तग्राव्णो यो ऽविता सुशिप्रः
सुत सोमस्य स जनास इन्द्रः ६]

जो महानुभाव, बलवान और कृश, ब्राह्मण और पश्चात्ताप करने वाला अपराधी है इन सब को देने वाला है, जो पत्थर फोड़ने वाले तथा यज्ञ करने वाले का समान रूप से न्याय करने वाला है—हे राष्ट्र जनो, वही तुम्हारा मुखिया होने के योग्य है।

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो
य युध्यमाना अवसे हवन्ते
यो विश्व य प्रतिमान बभूव
यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः [९]

जिस नायक के बिना मनुष्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते, आपत्ति के समय रक्षा के लिए जिसे पुकारते हैं, जो सारी प्रजा को न्याय की तुला पर तोलने वाला है, हे मनुष्यों! ऐसी बड़ी से बड़ी बाधाओं को मिटा देने वाले महापुरुषों को तुम अपना नेता स्वीकार करो।

द्यावा चिदस्मै पृथवी नमेते
शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते,
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो
वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः [१३]

जिसके तेजस्वी शासन के आगे आकाश और पृथ्वी झुक जाते हैं, जिस के बल के आगे पर्वतों को भी नम जाना पड़ता है, और जो जहां एक ओर प्रजा की रक्षा के लिये पालक और दयालु हो वहां दूसरी ओर दुष्टों के दलन के लिये भुजाओं और हाथों से दण्ड वज्र का प्रयोग कर सकता हो, हे मनुष्यों वह तुम्हारा नायक बनने की योग्यता रखता है।

यः सुन्वन्तमवति य: पचन्त
यः शसन्त यः शशमानमूती,
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं
राधः स जनास इन्द्रः [१४]

जो अपनी रक्षिका शक्ति से यज्ञ करने वाले यजमान की, तथा उपदेश देने वाले और उपदेशक की समान रूप से रक्षा करता है, जो ज्ञान की, विज्ञान की उन्नति करना तथा अन्य प्रजाजनों के ऐश्वर्य को बढ़ाना अपना धर्म समझता है, हे मनुष्यो वही तुम्हारा नायक बनने के योग्य है।

सूक्त के इन तथा अन्य मन्त्रों में राष्ट्र नायक के जो गुण बतलाए गए हैं; उन को यदि हम संग्रह रूप से देखना चाहें तो वे निम्नलिखित हैं—

१—वह विद्वान भी हो और वीर भी।

२—वह दयावान भी हो और अपराधियों को दण्ड देने की शक्ति भी रखता हो।

३—वह प्रजा के पालन करने की शक्ति के साथ २ शत्रुओं का पराभव करने की सामर्थ्य भी रखता हो।

४—प्रजा में ज्ञान-विज्ञान, अन्न और ऐश्वर्य की वृद्धि करना अपना कर्तव्य समझे।

५—बड़े और छोटे को एक समान न्याय की दृष्टि से देखने वाला हो।

६—जिस पर प्रजाजनों का पूर्ण विश्वास तथा आस्था हो।

ऋग्वेद का आदेश है कि ऐसे व्यक्ति को राष्ट्र का नायक चुनना चाहिए।

सूक्त के १४ मन्त्रों में राष्ट्र नायक या राष्ट्रपति की विशेषताओं का वर्णन करने के अनन्तर अन्तिम मन्त्र में यह बतलाया गया है कि जन—अर्थात् प्रजाजन उस के साथ क्या प्रतिज्ञा करें ? नायक तो तभी सफल हो सकता है जब उस के अनुयायी उसके अनुकूल हों, अन्यथा नायक की सब शक्तियां धरी की धरी रह जायगी।

सूक्त का अन्तिम वेद मन्त्र यह है—

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं
दर्दर्षि स किलासि सत्यः
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः
सुवीरासो विदथमा वदेम [१२-१:]

हे राष्ट्र नायक इन्द्र, तुम दुध्र अर्थात् शत्रुओं के लिए भयंकर, महान योद्धा हो, और साथ ही परहित के लिए जीवन व्यतीत करने वाले और साधारण गृहस्थ दोनों के लिए रक्षा द्वारा अन्न और ऐश्वर्य के देने वाले हो, इस कारण हम तुम्हें सत्य मानते हैं, हे इन्द्र, हम सदा स्वय तुम्हारे प्रिय अर्थात् अनुकूल रहेंगे, वीरता पूर्वक तुम्हारा साथ देंगे और अन्यों को भी वैसा ही बनने की प्रेरणा करें।

जनता की इस साक्षी में एक बात विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। कहा गया है कि हे इन्द्र, अपने गुणों के कारण तुम सत्य हो, सत्य अर्थात् मन साक्षी कर्म में एक होना—यह नायक का सब से बड़ा गुण है। जिस में सत्य है, उसके अनुयायी भी उससे प्रेम करने वाले और वीरता पूर्वक उस के आदेशों का पालन करने वाले होंगे, वे स्वयं तो अपने नेता के वफादार अनुयायी होंगे ही, अन्य देशवासियों को भी सच्चे अनुयायी बनाएंगे, यदि नेता सत्य है, तो अनुयायियों की शक्ति भी सत्य होगी, परन्तु यदि नेता असत्य है, तो प्रजाजन पूर्ण रूप से सच्चे अनुयायी और सच्चे नागरिक नहीं हो सकते।

इस सूक्त की पूर्ति के लिए ऋग्वेद के १० वें मण्डल के दो और मन्त्र सुना कर मैं इस प्रसंग को समाप्त करता हूँ।

राष्ट्रपति को राज्य के इन्द्रासन पर बैठने के लिए निमन्त्रण देता हुआ यज्ञपति कहता है—

आ त्वा हार्षमन्तरेभि ध्रुवास्तिष्ठा विचाचलिः
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्
इहैवैधि माप च्योष्ठा पर्वत इवाविचाचलिः
इन्द्र इहैव ध्रुवस्तिष्ठ इह राष्ट्रमु धारय।

हे राष्ट्रनायक, मैं तुम्हें इन्द्रासन पर बिठाता हूँ, तुम उस पर आसीन हो वहां तुम दृढ़तापूर्वक बैठ कर ऐसे शासन करो कि तुम्हें सम्पूर्ण प्रजाजन प्रेम करें, और राष्ट्र का अभ्युदय हो। हे इन्द्र, तुम सदा अपने कर्तव्य पर यति की भांति स्थिर रहो, कभी पतन की ओर मत जाओ, इसी प्रकार अपने व्रत की रक्षा करते हुए तुम राष्ट्र का धारण कर सकोगे। [अखिल भारतीय रेडियो, दिल्ली के सौजन्य से।]

★

पोंगल

श्री हरिदत्त वेदालंकार

उत्तर भारत में जिस समय मकर सक्रान्ति और माघी का त्यौहार मनाया जाता है, उस समय मद्रास प्रान्त में-विशेषतः तामिलनाड में पोंगल का प्रसिद्ध पर्व होता है। यह वहां असाधारण महत्व रखता है और जिस उत्साह और धूमधाम से मनाया जाता है, उसे देखते हुए इसे द्रविड़ देश का राष्ट्रीय पर्व कहा जा सकता है।

मकर संक्रांति पृथिवी की सूर्य के चारों ओर परिक्रमा के मार्ग में महत्वपूर्ण पड़ाव है। इस से पहले लगभग छः महीने से सूर्य आकाश में दक्षिण की ओर जाता हुआ दिखाई देता है, ठण्ड बढ़ने लगती है, दिन छोटे होने लगते हैं और रातें क्रमशः लम्बी हो जाती हैं। मकर सक्रान्ति तक शीत का प्रकोप चरम सीमा तक जा पहुँचता है, दानों की दशा दयनीय होती है, हाथ पैर ठण्ड से सिकुड़ने लगते हैं, दांत किटकिटाने लगते हैं, दिन में थोड़ा धूप होती है किन्तु वह बहुत छोटा होता जाता है, रात्रि सुरसा के समान अपना देह बढ़ाती चली जाती है। जनता जब शीत के आतङ्क से बहुत व्यथित होती है, उस समय दुःखदायी सर्दी के अन्त का सूचक पोंगल तथा मकर सक्राति का शुभ पर्व आता है, इस अवसर पर जनता द्वारा हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करना सर्वथा स्वाभाविक है। अग्रेजों के बडे दिन अथवा क्रिसमस त्यौहार के मूल में भी यही भावना है।

पृथिवी सूर्य के चारों ओर जिस मार्ग (क्रान्ति वृत्त) पर घूमती है, ज्योतिषियों ने उसे १२ कल्पित भागों में बांटा हुआ है, और उन के नाम उन स्थानों के तारों से मिल कर बनी हुई कुछ मिलती जुलती आकृति वाले पदार्थों के नाम पर रख लिए हैं। ये नाम इस प्रकार हैं—

१. मेष [मेढा], २. वृष [बैल], ३ मिथुन [जोड़ा], ४. कर्क [केकड़ा], ५. सिंह, ६. कन्या, ७ तुला, ८. वृश्चिक, ९. धनु, १०. मकर, ११. कुम्भ, १२. मीन।

प्रत्येक भाग की आकृति राशि कहलाती है। जब पृथिवी एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करती है, इसे सक्रांति या संक्रमण कहते हैं। यद्यपि पृथिवी घूम रही है किन्तु हमें ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य घूम रहा है अतः पृथिवी का संक्रान्ति को सूर्य की सक्रांति कहते हैं। छः मास [जुलाई से दसम्बर] तक सूर्य क्रान्तिवृत्त से दक्षिण की ओर जाता दिखाई देता है अतः इसे दक्षिणायन काल कहते हैं जनवरी से जून तक सूर्य उत्तर की ओर उदय होता दिखाई देता है अतः इसे उत्तरायण कहते हैं। उत्तरायण में प्रकाश और गर्मी की अधिकता से इसे शुभ माना गया है। वैदिक साहित्य में इसे देवयान कहा गया है और इस काल में मरने वालों की आत्मा सूर्यलोक में होती हुई स्वर्ग लोक जाने वाली मानी गई है। भीष्म पितामह ने उत्तरायण होने पर ही प्राण त्याग किया था। यद्यपि सूर्य २३ दिस० को ही उत्तरायण हो जाता है किन्तु पोंगल पर्व इस के २१-२२ दिन बाद माघ मास के पहले दिन मनाया जाता है।

पोंगल का पर्व तीन दिन चलता है। पहला दिन भोगी पोंगल (आमोद प्रमोद का पोंगल) कहलाता है। इस दिन इष्ट मित्र और सम्बन्धी एक दूसरे के घर पर जाते हैं, उपहार देते हैं, और सारा दिन

विविध प्रकार के आमोद प्रमोद में बीतता है।

दूसरा दिन सूर्य पोंगल कहलाता है। इस दिन सूर्य की उपासना विशेष रूप से होती है। विवाहित स्त्रियां सचैल स्नान करती हैं और गले कपड़े पहने हुए ही आगन में दूध में चावल डाल कर खीर पकाना शुरु करती हैं। ज्योंही यह उबलने लगती है तो सब एक साथ चिल्लाती हैं—पोंगल, पोंगल। बर्तन उतार कर उसे विघ्नेश्वर (गणपति) के सम्मुख रखा जाता है, उस में कुछ अंश गणेश जी को अर्पित किया जाता है, कुछ गौओं को दिया जाता है, शेष परिवार के सदस्य खाते हैं। इस दिन जब मित्र और सम्बन्धी एक दूसरे को मिलते हैं तो उनका पहला प्रश्न यह होता है—क्या खीर पक गयी, इसका उत्तर यही होता है—हा पक गयी। इसी लिए इसे पोंगल कहा जाता है। यह तेलुगू के पोंगेही तथा तामिल के पोंगरडु से निकला है—जिसका अर्थ है—उबलना। यह एक प्रकार का पाकोत्सव है।

तीसरा दिन मट्टपोंगल अर्थात् गौओं का उत्सव होता है। इस दिन गौओं की पूजा होती है जल से भरे बड़े बर्तन में केसर, कुछ वृक्षों के बीज और और पत्ते डाले जाते हैं और उन्हें अच्छी तरह मिला कर यह जल गौ बैलों पर छिड़का जाता है, उन की तीन परिक्रमायें की जाती हैं और चारों दिशाओं में जाकर इन के सम्मुख साष्टांग प्रणाम किया जाता है। भारतीय कृषि का प्रधान आधार गौ बैल हैं, उन्हीं के परिश्रम से खेत जोते जाते हैं, कटी फसल की गहाई भी बैलों से होती है और उन के परिश्रम से ही यह फसल बैलगाड़ियों पर लाद कर कृषकों के घरों में पहुँचती है। अत अपने अन्नदाता गौ बैलों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना स्वाभाविक है।

इस दिन उत्तर भारत की गोपाष्टमी वाले दिन की भांति गौओं के सींगों को अनेक रगों से रगा जाता है, गले में फूल पत्तियों की मालायें डाली जाती हैं, इन के साथ नारियल आदि विविध फल बांधे जाते हैं और जब पशु इन्हें गिरा देते हैं, तो पवित्र समझ कर इसे पाने के लिए भागदौड़ और छीनाझपटी होती है।

सब गौओं को बस्ती से बाहर लेजा कर ढोल आदि बजा कर विभिन्न दिशाओं में खदेड़ दिया जाता है, इस दिन पशुओं को बिना प्रतिबन्ध खेतों में चरने दिया जाता है वे कितना ही नुक्सान क्यों न करें, उन्हें खदेड़ा नहीं जाता। बस्ती से बाहर जहां पशु इकट्ठे हों वहां देवमूर्तियों का जलूस ले जाया जाता है। इस अवसर पर नृत्य और संगीत द्वारा जनता का मनोरञ्जन होता है।

पोंगल की समाप्ति एक बड़े विचित्र खेल से होती है जिस का उद्देश्य केवल मनोरञ्जन प्रतीत होता है। इस समय एकत्र जनसमुदाय एक बड़ा घेरा बना लेता है इस के अन्दर एक खरगोश छोड़ा जाता है जो घेरे से बाहर निकलने का प्रयत्न करता है, किन्तु बहुत इधर उधर कूदने के बाद अन्त में पकड़ा जाता है। इस के बाद गौएं तथा मूर्तियां जलूस के साथ बड़ी धूमधाम से वापिस लायी जाती हैं और तामिल देश के सब से अधिक लोकप्रिय पर्व की समाप्ति होती है।

✶

मत छेड़ो

श्री देवेन्द्र कुमार 'स्नेही'

मैं विप्लव की झंकार क्रान्ति की चिनगारी, मत छेड़ो ॥
मेरा इतिहास पुराना है, दहकता जग में छाती हूँ,
युग मुझे जलाया करता है, मैं युग के पाप जलाती हूँ ।
मेरा यदि परिचय पाना हो, तो जाकर सरयू से पूछो ॥
पूछो याद पूछ सको जाकर, सागर के खारे पानी से,
जिस की लहरें चिरपरिचित हैं, मेरी वैदग्ध्य कहानी से ।
गुजरात प्रांत की मिट्टी में, कण कण में मेरी छाया है,
जब, जहाँ धर्म पर पड़ी चोट, मैंने निज रूप दिखाया है ।
राजा दशरथ के महलों में, मैं जन्मी नया विधान लिये,
छल अनाचार के सेतु तोड़ रावण के मैंने प्राण लिये ।
मेरी लपटों में दुर्निवार जल जाते अत्याचारी, मत छेड़ो ।

जग का सूरज बुझ जाता जब, चन्द्रमा मलिन हो जाता है,
सिसकियों और चीत्कारों से, यह महाकाश भर जाता है।
नर कंकालों का भार न जब यह, धवल धरा सह पाती है,
मेरी ज्वाला तब हो प्रचण्ड, निज अरुण ध्वजा फहराती है ।
कारागृह की दीवारों के घेरे मुझ को रोक न सकते,
अमरों के वरदान तलक भी मीन मेख बन रोक न सकते ॥
मैं वही कि जिस ने कंस दुराचारी को भस्मसात कर डाला,
मैं वही कि जिस ने हिरण्यकशिपु का संसार जला डाला ।
मैं वही कि जो शक हूणों की आहुतियां बेबस लील गई,
मैं वही कि जिसने बौद्ध भ्रांति का घेरा फूंक दिया काला ।
मैं दहन शील मैं धुवाँधार, ज्वालामुखि प्रलयङ्कारी, मत छेड़ो ॥

अज्ञान तिमिर फैला नभ में, मानव की बुद्धि चकराई,
प्रतिमा ने प्रतिमा को लूटा, प्रज्ञा ने प्रज्ञा बहकाई ।
पाषाणों के भगवानों ने, जग को निष्कर्म बना डाला,
तब टंकारा में चमक उठी मैं, ले अपनी विप्लव-ज्वाला ।
कुछ वर्ष बाद गुजरात पोरबन्दर में फिर से धधक उठी,
परदेशी का शासन फूंका जब मैं बिजली बन भड़क उठी ।
आज यहाँ फिर भूख, पाप, पाखण्ड देख फटती छाती है,
धीरे धीरे मेरी भूभल भी मुझ से दहती जाती है ।
रोको ये हाहाकार नहीं फूँकूँगी स्वेच्छाचारी, मत छेड़ो ॥

★

साहित्यकार की विशेषताएं

श्री पीताम्बर नारायण

प्राचीन ग्रंथों में 'काव्य' और 'साहित्य' दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। अत 'काव्य' का यहा वही अर्थ समझना चाहिए, जो 'साहित्य' का है और साहित्यकार का वही जो कवि का।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के कवित्व दुर्लभतत्र, शक्तिस्तत्र सुदुर्लभ' श्लोक म छिपे भाव को अग्रेज आलोचकों ने अपनी भाषा में कह दिया है—कवि पैदा होते हैं, बनाए नहीं जाते। प्राणी के अग-प्रत्यग उसके जन्म के साथ र ही जुडे रहते हैं, जन्म होने के बाद नहीं जुडते। उनमें उचित साधन एव वातावरण के द्वारा केवल विकास मात्र होता है। दूसरे शब्दों में वह सहज हैं, ईश्वर प्रदत्त हैं। ठीक इसी प्रकार 'कवित्व' भी सहज है, ईश्वर प्रदत्त है।

कवित्व में, काव्य में 'रुचि' का भाव भी छिपा है, जो स्वयं भी सहज, एव ईश्वर प्रदत्त होती है। इसका दूसरा नाम हम 'सहृदयता' अथवा साहित्याभि-रुचि' दे सकते हैं। इस रुचि का व्यावहारिक मूल्य कुछ भी नहीं जब तक उसमें इसके प्रयोग की सामर्थ्य न हो। इसी सामर्थ्य को सस्कृत साहित्य शास्त्रियों ने शक्ति कहा है। यह शक्ति रुचि के अनुरूप ही स्वा भाविक एव ईश्वरीय देन होती है। इस ईश्वरीय देन शक्ति का लौकिक नाम प्रतिभा है, यह कवित्व शक्ति यह काव्याभिरुचि, यह प्रतिभा ही साहित्यकार के कति पय गुणों में से एक है।

साहित्यकार के उपर्युक्त गुणों को हमने दैवी कहा है। जहा तक इनमें दैवीपन है वहा तक तो साहित्यकार असमर्थ है। किन्तु, जहा उसे यह गुण स्वाभाविक रूप से जितनी मात्रा में प्राप्त हैं उसके सरक्षण एव विकास वृद्धि के लिए वह उत्तरदायी है। अनवरत अभ्यास उसको इस दिशा में अन्यतम सहायक व साधन है।

साहित्यकार में साहित्याभिरुचि भी है और निर्माण सामर्थ्य-शक्ति, प्रतिभा भी। अब उसके सामने समस्या है, वह क्या निर्माण करे और कैसे करे। क्या से उस का अभिप्राय साधन सामग्री से है और कैसे से निर्माण टगशैली से। इस क्या? और कैसे? के समाधान के लिए साहित्यकार मे दूसरी विशेषताए होती हैं।

अपनी पहली [क्या ?—सामग्री-विषय] जिज्ञासा की पूर्ति को साहित्यकार मे दो विशेषताए अपेक्षित हैं। एक अनुभूति दूसरी कल्पना। अनुभूति द्वारा साहित्यकार अतीत, वतमान [दृश्य-अदृश्य] सत्य का परिचय [ज्ञान-अनुभव] प्राप्त करता है और कल्पना द्वारा उसका मार्मिक-सजीव उद्घाटन करता है। कल्पना द्वारा अदृष्ट [भविष्य के सम्भाव्य] सत्य का भी निदर्शन होता है। कल्पना केवल भविष्य से ही नहीं वह वर्तमान एव भूत से भी सम्बन्धित है। वस्तुत, कल्पना साहित्य निर्माण में अनुभूति का पूरक है अतएव अनिवार्य है।

अनुभूति को साहित्य शास्त्रियों ने लोक निपुणता की सज्ञा दी है। एक साहित्यकार के लिए लोक [ससार] से, उसके जड चेतन सभी रूपों से परिचित होना, उसका ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। उसका बाह्य रूप ही नहीं, उसका आन्तरिक रूप भी उसे जानना चाहिए। यह अनुभूति, यह लोक परिचय जिस साहित्यकार में जितना ही गम्भीर, जितना ही विस्तृत होगा उसका साहित्य उतना ही स्वाभाविक, हृदयग्राही, चिरनूतन एव कल्पना का होगा।

साहित्यकार की यह अनुभूति केवल इह लोक तक ही सीमित नहीं रहनी चाहिए। उसे परलोक का भी परिपूर्ण ज्ञान होना चाहिए। इह लोक में समस्त दृष्ट पदार्थ इहलोक के अन्तर्गत है और समस्त अदृष्ट पर-लोक के। इहलोक में पृथ्वी, आकाश, अन्तरिक्ष, इनके जड चेतन पदार्थ, उनके आहार, आचार विचार आदि सभी आ जाते हैं। परलोक से अभिप्राय आत्मा, परमात्मा, माया, इनके स्वरूप एव परस्पर सम्बन्धी विचारों-सिद्धान्तों से हैं, जिनका पारिभाषिक

नाम दर्शन है।

लोक तथा परलोक की अनुभूति प्राप्त करने एवं उसे परिपुष्ट करने के अध्ययन, भ्रमण, गोष्ठी आदि अनेक उपाय हैं। साहित्यकार को सफल बनने को इन्हें अपनी सुविधा-सुयोग के अनुसार उपयोग में लाना चाहिए। इस प्रकार अनुभूति द्वारा साहित्य-निर्माण के लिए पर्याप्त सामग्री प्राप्त कर लेता है। उसकी क्या लिखूं ? का समस्या हल हो जाती है।

कैसे लिखूं ? के लिए साहित्यकार में अपेक्षित अतिरिक्त विशेषता है--शास्त्र नैपुण्य। हम इसे काव्य कौशल भी कह सकते हैं। यहां शास्त्र से अभिप्राय साहित्य-प्रणयन के नियामक ग्रन्थों से है। साहित्य-निर्माण के विधि-निषेध बतलाने वाले सैद्धान्तिक पुस्तकों से है। इन्हें रीति ग्रन्थ कहते हैं। रीति ग्रन्थों में उन सभी विषयों पर विचार होता है जिन्हें शास्त्रीय विवेचन में शैली अथवा साहित्य का कलापक्ष कहते हैं। इस शैली अथवा कलापक्ष में काव्य-विषयक (लक्षण भेद, रस विवेचन आदि का) परिपूर्ण ज्ञान के अतिरिक्त भाषा, छन्द तथा अलंकार का अधिकृत परिचय भी सम्मिलित है। साहित्यकार की अनुभूति जन्य-सामग्री (विषय-वस्तु) को यदि काव्य पुरुष की आत्मा कहा जाय तो रीति ग्रन्थों से प्राप्त विभिन्न शैलीरूप उसका शरीर है। कहना न होगा, सत्‌चित्, आनन्दमय आत्मा की व्यावहारिक सफलता के लिए स्वस्थ व सुन्दर शरीर नितान्त आवश्यक है। अतः साहित्यकार में अनुभूति तथा शास्त्र नैपुण्य दोनों गुण समान रूप से होने चाहिएं।

साहित्यकार की उपर्युक्त विशेषताएं अनिवार्य हैं, अतः मुख्य हैं। कुछ एक विशेषताएं और हैं जिन्हें हम गौण कह सकते हैं। वह अनिवार्य नहीं हैं, किन्तु सार्वभौम लेखक बनने के लिए आवश्यक कहे जा सकते हैं। यह उपर्युक्त गुणों के पोषक हैं, पूरक हैं।

विस्तृत अध्ययन साहित्यकार की उन गौण विशेषताओं में से एक है, इसे हम अध्ययन शीलता नाम भी दे सकते हैं। अध्ययन के अन्तर्गत सभी (भूत, भविष्य, वर्तमान) काल में, सभी (इतिहास, गणित, विज्ञान, राजनीति आदि) विषयों पर लिखे ग्रन्थों का पारायण आ जाता है।

कवि [साहित्यकार] के उपर्युक्त गुणों का संस्कृत साहित्य शास्त्री आचार्य मम्मट ने अपने काव्य प्रकाश में निम्न श्लोक में उल्लेख किया है—

शक्तिर्निपुणता लोक शास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥

अर्थात्—कवि बनने के लिए शक्ति, लोक निपुणता, शास्त्र निपुणता तथा गुरु मुख से अध्ययन [पाच] हेतु [विशेषताएं] अपेक्षित हैं।

साहित्यकार को अपनी विशेषताओं से प्राप्त साधन-सामग्री का अन्धानुकरण व अन्धप्रयोग न अभीष्ट नहीं है।

हमारा विवेचन अधूरा रह जाता है यदि हम साहित्यकार की दो और विशेषताओं का उल्लेख न कर दें जिनका अभी तक उल्लेख नहीं हुआ है। वह दो विशेषताएं हैं साहित्यकार की नैतिक-शुद्धि और उसकी आस्तिकता।

नैतिक शुद्धि से हमारा अभिप्राय साहित्यकार के व्यक्तिगत तथा सामाजिक, दैनिक, आचार-व्यवहार की पवित्रता से है। इसके द्वारा उसकी करनी-कथनी में एकरूपता अपेक्षित है। सदाचार, ऋत व मित-भाषण, नम्रता, सभ्यता आदि इसके कतिपय उपकरण हैं। आस्तिकता से अभिप्राय साहित्यकार के आत्मा-ईश्वर सम्बन्धी उसके विश्वास व भक्ति से है।

नैतिक शुद्धि तथा आस्तिकता साहित्यकार की व्यक्तिगत विशेषताएं हैं। इनका उसके साहित्य निर्माण से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। फिर भी, प्रकारान्तर से यह अवश्य सम्बन्धित हैं। आचारवान् साहित्यकार श्रेयस्कर विचारों को ही अपने साहित्य में

अन्तःकरण की शुद्धि

श्री स्वामी कृष्णानन्द

ब्राह्मण मुमुक्षु के लिए तप तथा विद्या परम हित कारी हैं। तप से पाप तथा भोग वासना रूपी मल का नाश होता है। विद्या द्वारा अमृत रस का पान करता है [श्वेताश्वतर भूमिका] यज्ञ दान तथा तप विवेकियों को पवित्र करने वाले हैं [गीता १८-५]। निष्काम वेदाध्ययन, यज्ञ दान तथा रोग उत्पन्न न करने वाले तप से अन्त करण की शुद्धि होने पर जिज्ञासा उत्पन्न होता है [बृहदा० ४ ४-२२], [मनु ११-२३४, २४४४, २३४, २३७] तप माहात्म्य तथा अन्य पाप शुद्धि के उपाय।

ऐसे शुद्ध अन्त करण वाला जिज्ञासु ही श्रवण का अधिकारी है। यह गीता शास्त्र जो तेरे लिए कहा गया है तप रहित को कभी नहीं कहना चाहिए [गीता १८ ६७]। तप रहित का विद्या सफल नहीं होनी [योग दर्शन २-१ व्यास भाष्य] तप रहित को योग सिद्धि नहीं होती। अनादि कर्म क्लेश जन्य वासना समूह चित्रित तथा विषय जाल सम्प्रयुक्त अशुद्धि [जो जो, तमो, मल युक्त, योग का अन्तराय-विघ्न है] रूपी है तप के बिना शिथिल नहीं होती। जैसे अशुद्ध मलिन वस्त्र को भट्टी में चढ़ा कर फिर शिला पर पीटने से वह शुद्ध होता है इसी प्रकार तप आदि क्रिय योग के अनुष्ठान से [अविद्या-अस्मिता-राग द्वेष-अभिनिवेश] क्लेश तनु [सूक्ष्म, दग्ध, बीजभाव को प्राप्त होते हैं। क्योंकि सूक्ष्म हुए हुए रागादि क्लेश ध्येय विषय के अतिरिक्त अन्य कोई वृत्ति उत्पन्न करने में असमर्थ होते हैं [योग दर्शन २ २]।

तप का स्वरूप योग दर्शन [२ ३ २] के भाष्य में भगवान् व्यास ने निरूपण किया है तथा उसके फल का पुन ४३ वे सूत्र में प्रतिपादन किया है तप के अनुष्ठान से अन्त करण की तमो रजो रूप अशुद्धि के आवरण के नाश से काया सिद्धि [अणिमादि] तथा इन्द्रिय सिद्धि [दूर श्रवणादि] उत्पन्न होता हैं। सिद्धियों का आत्मदर्शन में स्वरूपत कुछ उपयोग नहीं परन्तु ये अन्त करण की सूक्ष्मता तथा शुद्धता का एक लिंग मात्र हैं जिसके बिना गूढ सूक्ष्म आत्म दर्शन नहीं हो सकता [कठ]। इस प्रकार तप तितिक्षा द्वन्द्व सहन की शक्ति का अनेक प्रकार से ब्रह्म विद्या में अनिवार्य उपयोग है अत तितिक्षा को जिज्ञासा अधिकार का आवश्यक सामग्री षट् सम्पत्ति में उपयुक्त स्थान दिया गया है।

तप के स्वरूप तथा मर्यादा विषयक विचार

परन्तु तप के शुद्ध स्वरूप तथा उचित मर्यादा का ज्ञान भी आवश्यक है, अन्यथा लाभ के स्थान में हानि होने की सम्भावना है।

तप के सम्बन्ध में ऐसी दृष्टि होनी चाहिए कि यह साधन मात्र है इसे लक्ष्य ही नहीं बना देना चाहिए।

स्थान देगा। केवल यथार्थ के नाम पर वह वस्तु का कुरुचिपूर्ण नग्नचित्रण कभी न करेगा। अपने प्रदर्शन में वह सदा सुरुचि एवं सद्भावना का विचार रखेगा। आस्तिक साहित्यकार धर्मभीरु [सत्यभीरु] होगा। वह मर्यादा का पक्षपाती रहेगा। न वह स्वयं कभी उच्छृङ्खल होगा न उसका पाठक समाज ही। वह सत से आरम्भ करेगा, जिसकी ध्रुव परिणति चित् को छूती आनन्द में होती है इस प्रकार उसका साहित्य और उसका व्यक्तित्व दोनों ही युग-युगान्तर तक समाज के अनुकरणीय रहेंगे।

साहित्यकार की अन्तिम दोनों विशेषताएं विभिन्न सांस्कृतिक तथा नैतिक धारणाओं की कसौटी पर परखने पर सब देश और सब लोगों के लिए खरी नहीं उतर सकतीं। फिर भी किसी देश के किन्हीं लोगों के लिए तो मान्य हो ही सकती हैं। विशेषतया भारत जैसे देश और आर्य [व्यापक अर्थ में] जैसे साहित्यकार के लिए।

★

कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतों तथा काष्ठाकार मौन का भगवान् व्यास ने [सूत्र ३-३२ के भाष्य में] उल्लेख किया है। मनु आदि अन्य ग्रन्थों में भी इनका विधान प्रायश्चित्त रूप से आता है और सूत्र ४३ के अनुसार तप के फल भी सिद्धि आदि अवश्य होते हैं, इन्हें शास्त्र विरुद्ध कहना भूल है जब चित्त [जो तमोगुण प्रधान होने के कारण परम सात्त्विक साधन ओ३म् जाप ध्यान में नहीं लगता, तो इस प्रकार के स्थूल कठोर तप से मन का [जो गुण चंचल हो जाता है, चञ्चलता का वेग कम हो जाता है तब ध्यान आदि सूक्ष्म साधना की योग्यता हो जाती है। परन्तु घनी लोग जैसे ९९ के चक्कर में पड़े रहते हैं, इसी प्रकार साधक को भी आयु भर इन तपादि के चक्कर में नहीं पड़ जाना चाहिए। योग दर्शन में कहा है कि ऐसे तप में विक्षिप्त चित्त का अधिकार है अतः विक्षेप की निवृत्ति के अनन्तर ऐसे तपों का पुरश्चरण उपयुक्त नहीं।

कार्येन्द्रिय सिद्धिया आत्म दर्शन में प्रतिबन्धक है, अतः इनको लक्ष्य में रख कर भी तप के पुरश्चरण उपयुक्त नहीं हैं। ब्रह्म विद्या में तो द्वन्द्व सहिष्णुता का ही उपयोग है क्योंकि इस सहिष्णुता के अभाव में, जैसे ऊपर कहा गया है; श्रवण मनन आदि साधनों का अनुष्ठान असम्भव है, अतः शुद्ध चित्त वाले के लिए ऐसे उग्र पुरश्चरण करने की आवश्यकता नहीं। उसको सामान्य सहिष्णुता चाहिए। ऐसे उग्र पुरश्चरण आदि तप तो ध्यान रूपी योग तथा श्रवणादि साधनों में बाधक ही हैं। इन में समय तथा शक्ति का व्यर्थ अपव्यय होता है। क्योंकि इन से शरीर कृश तथा रोगी होता है अतः अन्तरंग साधनों के अनुष्ठान में भी ऐसे चान्द्रायण आदि अनुष्ठान प्रतिबन्ध हैं। इसी लिए विविदिषा साधन रूप से जहां [बृ० ४-४-२२] में तप का वर्णन है वहां 'अनाशकेन तपसा' कहा है अर्थात् तप ऐसा उग्र न हो जो शरीर के धातु-वैषम्य करके उसका उच्छेद ही न कर दे। ऐसे उग्र तपों को गीता [१८-१९] में भी तामस अर्थात् त्याज्य कहा है। नियत पारमार्थादि पूर्वक आहार व्यवहार करने से अन्य सब कार्यों को भी संयम पूर्वक करने से तथा नियत उपयुक्त काल में निद्रा तथा जागरण से-योग सब र के सब दुःखों के क्षय का हेतु बनता है अन्यथा सर्वनाश का। अतः आहार, वस्त्र, स्थान, एकान्त वास, मौन आदि को परमार्थ लक्ष्य की दृष्टि से [किसी योगादि के विचार से नहीं] शरीर को उपयुक्त मात्रा में ग्रहण करना ही तप है।

यदि प्रारब्ध वश उचित सामग्री न मिलती हो तथा अन्य रोगादि से पीड़ित हो तो चिन्ता रहित हो कर, चित्त क्षोभ के बिना प्रारब्ध तथा ईश्वर में विश्वास रख कर, ऐसे कष्ट को तप भाव से सहना ही परम फल ब्रह्मलोक देने वाला तप है। (बृ० उ० ५-११-१)।

इन्द्रिय दमन तथा मन की एकाग्रता ही ब्रह्मविद्या के उपयुक्त तप है, परन्तु सर्वोत्तम तप निन्दा स्तुति में समभाव से बरतना है (मनु २-१६२)। ब्राह्मण (यति) विषय के समान सम्मान में कदापि प्रीति न करे, प्रत्युत घृणा करे और सर्वलोक में अपमान की अमृत के समान इच्छा करे, दूसरे के द्वारा किये गये अपने अपमान को क्षमा कर के खेद न करे— मानापमान सहिष्णुता का यही विधान है।

स्तुति यति के लिए मृत्यु के समान है। सर्व साधारण बाह्य उग्र तप को महत्वपूर्ण समझते हैं अतः ऐसा तप अधिक प्रतिष्ठा का कारण बन जाता है, इसलिए ऐसा बाह्य उग्रतप न करना ही श्रेयस्कर है। जब इस प्रकार के तप करने वाले की प्रतिष्ठा होती है तो जनता हर समय वहां एकत्र होने लगती है, हर समय वहां मेला सा लगा रहता

हमारी गौण वन-सम्पत्ति

श्री अनुकूल चन्द्र दे तथा श्री रमेशचन्द्र नैथानी

भारत एक विशाल प्रदेश है जिस के साढ़े दस लाख वर्गमीलों में वन प्रसारित हैं। इन वनों में लगभग तेरह हजार प्रकार के वन पदार्थ पाये जाते हैं जिन में से हम केवल तीन हजार उपयोग में ला सके हैं। यह विस्तृत वन क्षेत्र 'मुख्य वन सम्पत्ति' से तो समृद्धशाली है तथा 'गौण वन सम्पत्ति' से भी भरपूर है।

गौण वन सम्पत्ति क्या है? इस विषय में भिन्न भिन्न वैज्ञानिकों के भिन्न भिन्न मत हैं। पर कुछ ऐसे पदार्थ हैं जिन्हें सभी ने गौण वनोपज स्वीकार किया है। वन में हमें मुख्य वन सम्पत्ति—लकड़ी तथा

है, अपना साधन सब भङ्ग हो जाता है ब्रह्मनिष्ठता तथा जीवन मुक्ति असम्भव हो जाती है। इस लिए गंगा आदि नदियों में बहुत देर तक खड़े रहना अथवा धूप में खड़े रहना तथा अत्यन्त नग्न रहना आदि व्यवहार परम श्रेय में उपर्युक्त कारण से भी सामान्यत बाधक हो जाते हैं। अतः साधारण वृत्ति में रहना ही उचित है। यथासम्भव वस्त्रादि की आवश्यकताएं कम रखे। गीता (१७-१४, १६) में तप के कायिक वाचिक, मानसिक तथा सात्त्विक, राजस, तामस भेदों का वर्णन भी विचारणीय है—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजन शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीर तप उच्यते ॥
अनुद्वेगकर वाक्य सत्य प्रियहित च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसन चैव वाङ्मय तप उच्यते ।
मन प्रसादसौम्यत्व मौनमात्मविनिग्रह
भावसशुद्धिरित्येतत् तपोम न समुच्यते ।
गीता १४-१६।

'देव, द्विज, गुरु तथा विद्वान् जनों की सेवा शौच (स्वच्छता), सरलता (सीधापन), ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा का पालन—ये सब शारीरिक तप कहलाते हैं। अपनी वाणी द्वारा दूसरों को उद्वेग उत्पन्न न करने वाले सत्य, प्रिय तथा हितकारी वाक्यों का उच्चारण करना, शास्त्र सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय तथा अभ्यास यह वाणी का तप है। मन की प्रसन्नता, सौम्यभाव मौन, आत्मनिग्रह भावों की शुद्धि ये सब मानस तप कहे जाते हैं।'

श्रद्धया परयातप्तपस्त त्रिविध नरै ।
अफलाकाङ्क्षिभियुक्तै सात्त्विक परिचक्षते।
सत्कारमानपूजार्थं तपोदम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्त राजस चलम ध्रुवम् ॥
मूढ़ग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तप ।
परस्योत्सादनार्थ वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥
(गी० १७-१७-१९)

'उपर्युक्त शारीरिक वाचिक तथा मानसिक तीनों प्रकार के तपों को जब फलाशा से रहित युक्त (सयमी) पुरुषों द्वारा परम श्रद्धा पूर्वक सम्पादन किया जाता है तो वह तप सात्त्विक होता है। और अपने सत्कार मान, पूजा की भावना से दम्भ पूर्वक किये गये तप को जिस का फल चञ्चल तथा नाशवान् होता है राजस कहते हैं। मूढ़ता का ही जिस में आग्रह है और क्लेश पूर्वक जो तप किया जावे या जो दूसरों को दुःख देने के लिए ही किया जाता है वह तामस तप कहलाता है।

अतः शीतोष्ण क्षुधा पिपासा, निन्दा स्तुति आदि द्वन्द्वों की सहन-शीलता रूपी मर्यादित विचार युक्त तितिक्षा ब्रह्म विद्या के साधन श्रवणादि सम्पादन के लिए अनिवार्य हैं। इस से शरीर तथा प्राणों के विक्षेप शीतोष्ण स्पर्श तथा क्षुधा पिपासा की भी निवृत्ति होती है।

★

शहतार-के अतिरिक्त फल फूल पत्ते, छाल, जड़ी बूटी, घास फूस बास इत्यादि और अन्य पदार्थ उपलब्ध होते हैं जिनके द्वारा हम अपने लिए दैनिक आवश्यकता की वस्तु प्राप्त करते हैं। जैसे, रस्सा का रेशा, रूई गोंद बिरोजा वायवीय तैल (एसेन्शियल आयल्स) बसायुक्त तैल रंग चमशोधक पदार्थ औषधिया कन्द मूल, फल आदि। इन ही को सत्र सम्मति द्वारा गौण वन सम्पत्ति कहा गया है।

यह वन सम्पत्ति लकड़ी तथा शहतार से केवल उपज की तुलना में ही गौण हैं आर्थिक दृष्टिकोण से नहीं। यद्यपि लाख बिरोजा बाम तथा घास के अतिरिक्त अन्य गौण वन पदार्थों के निष्कासन की कोई विशेष वैज्ञानिक पद्धति नहीं अपनाई गई फिर भी अनुसन्धान तत्परता तथा वैज्ञानिकों के अविरल परिश्रम से, इन गौण वन पदार्थों द्वारा देश की आर्थिक अवस्था में काफी सुधार हुआ है और हमारा राष्ट्र उन्नति के पथ पर एक पग और अग्रसर हो सका है। इन के द्वारा औषधि वायवीय तैल चर्मशोधन कागज निर्माण आदि शिल्प प्रतिष्ठित भी हो गये हैं।

सन् १६४६-५० के आयात और निर्यात के आंकड़ों से पता चलता है कि भारत से २१ करोड़ रुपये की गौण वन सम्पत्ति कच्चे माल के रूप में विदेशों को भेजा गई और १८॥ करोड़ रुपयों का विदेशों से लाई गई। यह भारतीय वन की आय का ३० प्रतिशत भाग है। कुछ घास फूस आदि अनेकों रुपयों की गौण वन सम्पत्ति का उपयोग स्वयं भारतीयों ने ही किया जो कि इन आंकड़ों में सम्मिलित नहीं है। इन आंकड़ों के आधार पर कह सकते हैं कि यह गौण वन सम्पत्ति भारतीय वाणिज्य का एक प्रमुख अंग है। यह आंकड़े केवल उन ही पदार्थों से सम्बन्धित हैं जिन की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। किन्तु इन के अतिरिक्त और भी करोड़ों रुपये की वन सम्पत्ति आज वनों में व्यर्थ पड़ी रहती है। यदि इस की उपयोगिता भी सिद्ध हो जाय तो भारतीय वाणिज्य एवं व्यवसाय की महान् उन्नति हो और आर्थिक अवस्था में क्रांतिकारी सुधार हो जाय। इस सुविचार को मूर्त रूप देने में वन अनुसन्धानशाला, देहरादून का गौण वन उपज विभाग प्रयत्नशील है।

भारत के महत्वपूर्ण गौण वन पदार्थों की सूची निम्न प्रकार है—

(१) जड़ी बूटिया, (२) विषैले पौधे (३) खाद्य पदार्थ, (४) घास फूस तथा जानवरों का चारा, (५) बेंत, (६) रेशा तथा कपास, (७) वायवीय तैल, (८) तल बीज, (९) बिरोजा, तैल बिरोजा तथा गोंदिल तैल बिरोजा (१०) गोंद तथा लेसदार पदार्थ, (११) रंग, (१२) चर्म शोधक पदार्थ (१३) कत्था,(१४) कोयला, (१५) चाक तार (१६ टोकरी बनाने का सामान, १७) भेषज साबुन (१८) बुरादा तथा लकड़ी के कतरन (१९) चटाई, दरी और आसन, (२०) बीड़ी के पत्ते, (२१) रबर (२२) हवन सामग्री, (२३) शाला, (२४) श्वेतसार, (२५) जान्तव पदार्थ।

निम्नलिखित पंक्तियों में उक्त गौण वन-सम्पत्तियों के उपयोगों का यथाक्रम विवरण दिया गया है।

जड़ी बूटिया—यह प्रमुख गौण वन सम्पत्ति है जिस का उपयोग हम रोज दैनिक व्यवहार में दो प्रकार से होते है—

(i) औषधियों के रूप में (ii) मसाले के रूप में।

औषधिया—पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति के अनुसार उपयोग में आने वाली औषधिया अधिकतर जड़ी बूटियों से उपलब्ध होती हैं। बहुत सी जड़ी बूटिया मूल रूप में प्रयोग करने से इन औषधियों का अच्छा बदल' सिद्ध हुई हैं। निम्नलिखित जड़ी बूटिया भारतीय वनों से एकत्र की जाती हैं—वचनाग, सैन्टोनिन, बैलेडोना चिरायता, इन्द्रायण, धतूरा, कल्प सोमलता,

कुचला, खुरासानी अजवायन, डिजीटेलिस, दालचीनी, वन ककड़ी, रेवन्द चानी, सर्पगन्धा इत्यादि २।

प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धति यहां की ६० प्रतिशत जनता के स्वास्थ्य की रक्षक है और केवल वन सम्पत्ति पर ही निर्भर है। इन जड़ी बूटियों का संग्रह वन के ठेकेदारों के हाथों मे है। वे इन का संग्रह वैज्ञानिक ढङ्ग से न कर व्यापारिक ढङ्ग से करते हैं। इस लिए सर्व साधारण को इन से पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं हो पाता। अतएव इन जड़ी बूटियों को अधिक उपयोगी बनाने के लिए हमें संग्रह करने का समय या मौसम, उस का सक्रिय भाग, तथा शोधन प्रक्रिया ध्यान में रखना आवश्यक है। इन सब ही बातों का विशेष अध्ययन वन अनुसन्धान शाला, देहरादून में हो रहा है। औषधोपयोग में आने वाली कुछ जड़ी बूटियां जो कि वनों से उपलब्ध होती हैं निम्न प्रकार हैं—

अतीस, अशोक, अर्जुन, आवला, अश्वगन्ध, चन्दन, वनफशा, वंशलोचन, वच, दशमूल, गजपीपल, हरड़, इलायची इत्यादि।

मसाले—ये भी एक प्रकार की औषधियां ही हैं। दैनिक खाद्य वस्तु होने के साथ ये गुण में औषधियों से किसी प्रकार कम लाभदायी नहीं हैं। दालचीनी, गोल मिर्च, तेजपात, हींग इत्यादि हमारे देश की वन सम्पत्तियों में से हैं जो कि मसालों के साथ साथ औषधियों में भी काम आती हैं।

विषैले पौधे -वनों में बहुत से ऐसे पौधे हैं जो मानव जीवन के लिए हानिकारक हैं और इन के प्रयोग से मनुष्यों का प्राण हीन या विकलांग होना आश्चर्यजनक नहीं है। इन पौधों की दूसरी श्रेणी के पौधे ऐसे हैं जो कीड़ों के लिए ही हानिकारक हैं पर मनुष्यों के लिए नहीं। इन पौधों का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। इन से बनाई हुई औषधियां मच्छर मक्खी, खटमल तथा अन्य कृषि हानिकारक कीटों से छुटकारा पाने के लिए अति उत्तम हैं। पायरेथ्रम, कुथ, नीम, यूकलिप्टस, पानरी आदि इसी प्रकार के वन-पदार्थ हैं।

खाद्य पदार्थ—यह सर्व विदित है कि प्राचीन काल से साधु सन्यासी अपने जीवन यापन की सभी वस्तुएं इसी देश के जंगलों से प्राप्त करते रहे हैं तो कोई कारण नहीं कि आजकल भी वनों से उपलब्ध वैसे सहायक खाद्य पदार्थ का अधिक करके उपयोग हम अन्न संकट को दूर कर लें अब तक की गवेषणा से पता चलता है कि कम से कम अखरोट, अनार आंवला, कटहल, करौंधा, कायफल, खजूर गेठी, चालता, चिलगोजा जामुन, ढेऊ, लिसोढ़ा, बेल, बेर, शहतूत सीताफल, आदि के साथ साथ इमली के बीज जैसे अन्य वन पदार्थ भी आज की खाद्य पूर्ति में अच्छे सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

घास, फूस तथा जानवरों का चारा—भारत एक कृषि प्रधान देश है। मवेशियों की संख्या भी यहां कुछ न्यून नहीं है। केवल कृषि जन्य घास तथा भूस, पुआल आदि से ही सारे मवेशियों का भरण पोषण भली प्रकार नहीं होता। इन की उदर पूर्ति के लिए भी हमें वनों की शरण ग्रहण करनी पड़ती है। किन्तु चूंकि मवेशियों के चराने से वनों को भारी हानि पहुँचती है इसलिए वनज घास को सुखा कर या शोधित करके भविष्य के लिए संचित करना चाहिए। मुख्य वनज चारा-घास ये हैं–मुशेल घास, मन जीरा घास, जर्गी घास, फुलरा घास, अञ्जना घास, गोड़ला घास, दूब, छापरी घास, सैन घास इत्यादि।

चारा-घास के अतिरिक्त और भी घास फूस वन में पाये जाते हैं जिन का प्रयोग बहुत से उद्योग धन्धों में होता है। कुछ तो कागज बनाने के काम आते हैं जैसे सवाई या भावर घास। कुछ घास रस्सी बनाने

के काम में आती हैं जैसे मूञ्ज, कास और कुशा; कुछ छप्पर बनाने के काम में आते हैं। इस के लिए पूला, कास, मूञ्ज के अतिरिक्त खसखस घास भी उपयोग होता है। खसखस की टट्टिया, तरकिया और पंखे गर्मियो में शताब्दियों से शीतल सुगन्धित वायु का आनन्द देते रहे हैं इन सब कार्यों के अतिरिक्त घास स्वत: वनस्पति के लिए भी एक आवश्यक उद्भिज है, यह भूमि कटाव को रोकती है। घास मिट्टी के कणों को अपनी जड़ो से बांध कर स्वस्थान रखती है।

बास भी घास का स्वजातीय है। जिस प्रकार घास का जीवन फूल तथा फल निकल आने पर समाप्त हो जाता है उसी प्रकार बास का अन्त भी उस के फूल तथा फल आने पर हो जाता है। बास की साधारण आयु दस वर्ष से सौ वर्ष तक होती है पर कोई २ बास इस से भी अधिक समय तक फूलता फलता है। इस के फल खाने में स्वादिष्ट होते हैं। ग्रामवासी इन्हें बड़े चाव से खाते हैं। ग्रामवासियों के लिए तो यह नित्य व्यवहार्य वस्तु है। इस से वे टोकरी, चटाई, छतरी के हत्थे, छड़ी, लाठी आदि बनाते हैं। बास की कोंपल का आचार भी बनता है।

बेत—खजूर वर्गीय पौधा है। यह भारत के उन स्थानों में पाया जाता है जहा वर्षा अधिक होती है। एक बेंत की लम्बाई ३०० से ४०० फीट तक होती है। यह लचकदार होने के कारण रस्सी बनाने के काम आता है। पर्वतवासियों के लिए तो यह एक महत्वपूर्ण वस्तु है। इस से पहाड़ी नदियों पर पुल बनाया जाता है। यह छड़ी, टोकरी तथा कुर्सी बुनने के काम में भी आता है। भारत में अधिकतर बेंत आसाम, उड़ीसा, एव दाक्षणी भारत में पाया जाता है। कछार लखीमपुर,, पुरी, नैल्लोर, तिनमैली एवं त्रिवांकुर इस की मुख्य मण्डिया हैं। भारत में द्वन्द्व श्रेणी का बेंत होता तो है पर यह छड़ी आदि के लिए उत्तम नहीं है। इसी कारण हमें यह मलका से आयात करना पड़ता है। कुछ बत हमारे देश से भी पश्चिमी देशा को निर्यात किया जाता है।

रेशा तथा कपास—कुछ वृक्षों की टहनियों और वल्कलों से सन और पटसन के समान रेशा प्राप्त होता है। यह रेशे ब्रुश, झाड़ू, टोपी, टोकरी, चटाई, परों की छाल कागज आदि बनाने में; रस्सी, सुतली, धागे तथा कपड़े बुनने में बहुलता से प्रयुक्त होता है।

विभाजन के पश्चात् पटसन की समस्या जटिल हो चली है अत: हमें अपने वनों का सहारा लेना चाहिए। वन में कुछ वृक्ष ऐसे हैं जिन के रेशे बहुत से कामों में पटसन की जगह उपयुक्त होते हैं। उन से वैज्ञानिक ढग पर रेशा प्राप्त करना आवश्यक है। कुछ मुख्य रेशे—रामबास, ताड़वृक्ष के रेशे, भावर घास, राजमहल सन, भाग सन, मूर्वासन, बिच्छू घास, मरोड़फली सन, पीपल सन, आकसन, मालभन सन आदि हैं।

कुछ बीजों के ऊपर कपास जैसा कोमल रुवा पाया जाता है। वन म हमें सेमल कपास, आक कपास आदि मिलते हैं। इन में सेमल कपास ही मुख्य है। युद्ध से पूर्व सेमल कपास जावा से आने वाली रुई से कम महत्वपूर्ण माना जाता था पर युद्ध के दिनों मे इस पर गवेषणा करने पर ज्ञात हुआ कि यदि इसे विधिपूर्वक एकत्र किया जाय और इस में अन्य कपास न मिलाए जाय तो यह सर्वोत्तम है। यह नाविकों की रक्षा कवच आदि के लिए विशेष रूप से उपयोगी होता है। कमल की भांति इस पर भी जल का प्रभाव नहीं होता। इसीलिए यह समुद्री बेड़ो के लिए एक आवश्यक वस्तु है। (शेष पृष्ठ ६६ पर)

गुरुकुल समाचार

ऋतु रंग

स्वस्थ्य और ताजगी प्रदान करने वाला शीतकाल का वातावरण अपना प्रभाव प्रदर्शित कर रहा है। प्रभात में गुलाबी जाड़ा पड़ने लगा है। अभी पूर्व दिशा का काटने वाली हवाएँ शुरू नहीं हुई। ताल तलैयों के जल उज्वल हो गए। नवमल्लिका (चमेला) और कुरबक के कुसुम खिलने लगे हैं। तलैयों में सिंघाड़ो की बहार है। गुरुकुल का धान की खेतियाँ कट कट चुकी हैं और नये खेतों में गेहूँ और चने बो दिए गए हैं। शीत बढ़ते ही मलेरिया आदि का प्रभाव कम हो गया है। छुट्टी के दिनों में छात्रों का शीतकालीन वन-यात्राएँ प्रारम्भ हो गई हैं। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य प्रशसनीय है।

शीतकालीन सत्र

दीपमाला के बाद से विश्वविद्यालय का शीतकालीन शिक्षासत्र नए उत्साह और नई उमंग के साथ प्रारम्भ हो गया है। दीपावली से पूर्व ही छमाही परीक्षाएँ समाप्त हो चुकी थीं। छात्रों का परिणाम सुना दिए गए हैं।

विजया दशमी

प्रतिवर्ष की भाँति इस बार भी विजयोत्सव के दिनों में क्रीड़ाओं की अच्छी रौनक रही। महाविद्यालय के छात्रों ने इस प्रसंग पर खेलों का विशेष आयोजन किया था। जिन में अनेक छात्र पुरस्कार के भागी हुए तेज दौड़ में ब्र० भूदेव और ब्र० जयवीर क्रमशः प्रथम और द्वितीय पुरस्कार जीत गए एक टाँग की दौड़ में ब्र० रामचन्द्र और ब्र० गोपाल १ म और २ य रहे। तीन टाँग का दौड़ में ब्र० भूदेव और ब्र० केशव की जोड़ी प्रथम रही। रस्सा-कशी में युक्तप्रांतीय दल और अन्य प्रांतीय दल के संघर्ष में अन्य प्रान्तीय दल (दलनायक—ब्र० राजबहादुर) ने विजय पाई। हॉकी के सान्मुख्य में 'हिन्दुस्तान दल' (दल नायक—ब्र० महेन्द्र १५ श) ने विजय और पुरस्कार पाए।

दशमी के दिन वेदमन्दिर में कुलवासी श्रीराम-दर्शन की सभा के लिए समवेत हुए। ब्रह्मचारियों ने श्रीराम और रामायण के अन्य चरित्रों के आदर्शों का गुण दर्शन किया। श्री आचार्य जी ने श्रीराम के 'मर्यादा पुरुषोत्तम' विशेषण के आधार पर विस्तार से विवेचन किया।

दीपमालिकोत्सव

कुलवासियों ने उमंग के साथ दीपावली का पर्व मनाया। प्रार्थना भवन में विशेष यज्ञ के उपरान्त कुलसभा में छात्रों ने महर्षि दयानन्द जी के व्यक्तित्व और कार्यों पर विवेचना की। श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने महर्षि के व्यक्तित्व पर विशद मीमांसा की। रात को छात्रों ने विशेष उमंग के साथ दीपिकाएँ और मोमबत्तियाँ जलाकर प्रकाशोत्सव मनाया। छात्रों द्वारा तैयार किए गए गुब्बारों का प्रदर्शन बहुत मनोहारी रहा। अगले दिन दयानन्दाब्द के उपलक्ष्य में गुरुकुलीय आर्यसमाज की ओर से श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक की अध्यक्षता में महर्षि निर्वाण उत्सव मनाया गया। जिस में पञ्चपुरा की सभी आर्य समाजों ने भाग लिया। श्री परिव्राजक जी ने प्रगतिशील मनोभाव रखते हुए जीवन को समन्वय की ओर ले जाने की महर्षि की भावना का बड़ी खूबी से प्रतिपादन किया।

माम्य मेहमान

अपने सूबे के तपे हुए लोकसेवक और आर्य-

विद्वान् श्री अलगूराय जी शास्त्री गाँधी जयन्ती के दिन कुल में पधारे। स्टेशन पर महाविद्यालय के छात्रों ने आप का स्वागत किया। आपने कुल की परिक्रमा कर के समस्त विभागों का अवलोकन किया। छात्रों के साथ आप खूब घुलमिल कर प्रेम पूर्वक विविध विषयों पर चर्चा और वार्तािवनोद करते रहे। महाविद्यालय के छात्रों के साथ ही आपने प्रातःकाल का जलपान किया। अपराह्न में गाँधी-जयन्ती की विशाल कुलसभा में आपने युग पुरुष गाँधीजी की महत्ता और विशेषताओं पर प्रकाश डाला और प्रसंगवशात् गुरुकुल शिक्षा-विधि के प्रथम मन्त्रदाता महर्षि दयानन्द सरस्वती की जीवन दृष्टि और कार्यप्रणाली की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए दोनों युग पुरुषों की महान् राष्ट्र सेवाओं के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। आपकी विषय प्रतिपादन शैली से सभी प्रभावित हुए।

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध मनीषी और एलफिन्स्टन कालेज मुम्बई के प्रोफेसर डाक्टर एन० जे० शेंडे एम० ए० प०-एच० डी० ने पधार कर गुरुकुल शिक्षा नगर की परिक्रमा की।

फरग्यूसन कालेज पूना के इतिहास के प्रोफेसर श्रीयुत श्रीराम शर्मा अपने विद्वान् मित्रों के साथ विजयी-दशमी की छुट्टियों में गुरुकुल देखने को पधारे।

अभिनन्दन

गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक श्री जयदेव जी वेदालंकार (जोधपुर निवासी) विशेष अध्ययन के लिए लन्दन विश्वविद्यालय गए थे। वहाँ उन्होंने डाक्टर टर्नर की देख रेख में 'प्रबोध चन्द्रोदय' नामक संस्कृत नाटक पर विशेष गवेषणा की है। इस कार्य के लिए उन्होंने इङ्गलैण्ड और फ्रांस के विविध पुस्तकालयों में विद्यमान कोई प्राचीन १६ हस्तलिखित प्रतियों की छानबीन कर के एक विशद और खोज-पूर्ण प्रबन्ध तैयार किया है। उसी प्रबन्ध पर आपको लन्दन विश्वविद्यालय ने पी०-एच० डी० की उपाधि से सम्मानित किया है। आप गत १६ सितम्बर को स्वदेश पहुँच गए हैं। श्री जयदेव जी की इस यशस्वी उपलब्धि पर समस्त कुलवासी उनका सप्रेम अभिनन्दन करते हैं।

पुरातत्व-संग्रहालय

उत्तरप्रदेश योजना-विभाग के उपमन्त्री श्री ठाकुर फूलसिंह जी उस दिन संग्रहालय में पधारे। आप ने देशविदेश की मुद्राओं, पुरानी हस्तलिखित पोथियों और ऐतिहासिक मानचित्रों को बड़ी अभिरुचि और ध्यान से देखा।

इसके अतिरिक्त भारत सरकार के उपगृहमन्त्री श्रीयुत बी० एन० दातार महोदय ने गुरुकुल में पधार कर वेद-मन्दिर और संग्रहालय का बारीकी से अवलोकन किया। संगमरमर के शिला-फलकों पर अंकित, वेदों के चुने हुए सुभाषितों का आपने प्रेम से वाचन किया। वे आपको बहुत पसन्द आए। संग्रहालय में टँगे हुए भारत के ऐतिहासिक नकशे, लिपि-विकास के चार्ट और शिला-लेखों की छापें आपने बड़ी दिलचस्पी से देखीं। महमूद गजनवी का वह सिक्का (जिस में देवनागराक्षरों में कलमें का संस्कृत अनुवाद अंकित है) भी आपने गौर से देखा संग्रहालय की शिक्षाप्रद अन्य सामग्री देख कर भी आपने बहुत प्रसन्नता और परितोष प्रकट किया।

सितम्बर मास में १६८७ प्रेक्षकों ने संग्रहालय देखा। कई शिक्षा संस्थाओं के छात्र दशहरे की छुट्टी में संग्रहालय देखने के लिए आए। जिन में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—सरकारी ट्रेनिंग कालेज बीकानेर। आयुर्वेदिक कालेज, बनारस। कामर्स

कालेज वर्धा। आयुर्वेदिक कालेज उदयपुर। बिड़ला कालेज पिलानी। कन्या गुरुकुल देहरादून।

गत मास डा० शिवनाथराय जी द्वारा सग्रहालय को जौनसार के जनजीवन से सम्बन्ध रखने वाली विविध वस्तुएँ मंडवा कंगनी आदि अनाज आग जलाने के साधन, चोलू आदि के तेल स्त्री पुरुषों के आभूषण और विष्णु की एक सुन्दर मध्यकालीन मूर्ति प्राप्त हुई है। पुरातत्वीय रसायन शास्त्र देहरादून के सौजन्य से अनेक प्रकार के खनिज पत्थर प्राप्त हुए हैं।

प्रकृति-विज्ञान सग्रहालय

भारतीय ससद् के सदस्य और उ० प्र० कॉग्रेस समिति के प्रधान श्री अलगूराय जी शास्त्री ने गाँधी जयन्ती के दिन सग्रहालय का गौर से निरीक्षण करके निम्नलिखित अभिप्राय प्रकट किया — जो देखा उससे चकित-सा रह गया कि अपने ही पुरुषार्थ से ऐसा सुन्दर सग्रहालय गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने किस प्रकार रच डाला। इसके लिए उनकी कितनी प्रशसा की जाय। धन्य है यह सस्था और इसके परिचालक जो चुपचाप बिना ढोल पीटे अपना स्तुत्य कार्य हिमालय के चरणों में बैठे बैठे कर रहे हैं।'

विजया-दशमी की छुट्टियों में अनेक शिक्षा-सस्थाओं की छात्र मडलियों ने गुरुकुल के प्रकृति विज्ञान सग्रहालय को बड़ी उत्सुकता और दिलचस्पी के साथ देखा। बिरला कालेज पिलानी के वनस्पति विभाग के अध्यक्ष डा० बी० एन० मुले महोदय विशेष रूप से अपने छात्रों को यह सग्रहालय दिखाने लाए। आपने कहा— यह सग्रहालय बहुत व्यवस्था से रक्खा गया है और पर्याप्त शिक्षाप्रद है।'

इसके अतिरिक्त अन्य कई सस्थाओं के छात्रों ने इससे लाभ उठाया जिनमें कुछ के नाम इस प्रकार हैं एम० बी० हाईस्कूल, बटाला। टी० टी० कालेज बीकानेर। मेडिकल कालेज, अमृतसर। आयुर्वेद कालेज, बनारस विश्वविद्यालय। आयुर्वेद कालेज बेगूसराय। रामजस हाईस्कूल, दिल्ली। कन्या गुरुकुल, देहरादून। सेठ एम० ए० हाईस्कूल अधेरी, मुम्बई। सरकारी बालिका विद्यालय, अधेरी, मुम्बई। दादाभाई हाईस्कूल आनन्द गुजरात।

★

हमारी गौण वन सम्पत्ति

(पृष्ठ ६३ वे का शेष)

वायवीय तैल—भारत प्राचीन काल से ही इत्र तथा सुगन्धित तैलों के लिए प्रसिद्ध है। अधिकतर वायवीय तैल वन पदार्थों से ही प्राप्त किया जाता है। इस समय लगभग १३०० वन पदार्थ ऐसे हैं जिन से हम वायवीय तैल प्राप्त कर सकते हैं।

गन्धराज, मालती, चम्पा, चमेली और गुलाब के अतिरिक्त चन्दन, अगरु और कपूर जैसी सुगन्धित वस्तुओं का उपयोग हमारे देश में प्राचीन काल से ही प्रचलित है। जिस में से हम कपूर को सदा से ही आयात करते रहे हैं।

शृंगार मे, औषधियों के दुर्गन्ध निवारण में, खान पान को सुगन्धित बनाने में, मृत सस्कार में तथा ताम्बूल आदि में हम वायवीय तैल का उपयोग सर्वदा से करते आ रहे हैं। हमारे देश के कुछ मुख्य वायवीय तैल उत्पादक वन पदार्थ निम्नलिखित हैं—

अगरु, यूकिलिप्टस (नीलगीरी), कुथ, कपूर, केवड़ा खसखस, गुलाब चन्दन, तेजपात दालचीनी, नींबूघास, वेदमुश्क, मातिया घास मौलसीरी, हाऊबेर, सिट्रोनीला और सोफिया।

★

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग, २॥), २॥), २॥)
ब्राह्मण की गौ ,, ॥)
वैदिक अध्यात्मविद्या श्री भगवद्दत्त १)
वैदिक स्वप्न विज्ञान ,, ?)
वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां] श्री वेदव्रत २)
वैदिक सूक्तियां श्री रामनाथ १॥)
वरुण की नौका [दो भाग] श्री प्रियव्रत ६)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द श्री चमूपति २), १॥)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १॥)

धार्मिक साहित्य

सन्ध्या रहस्य श्री विश्वनाथ २)
धर्मोपदेश १, २, ३ भाग स्वा० श्रद्धानन्द, १), १), १॥)
आत्ममीमांसा श्री नन्दलाल २)
प्रार्थनावली ।) कविता मंजरी ।–)
आर्यसमाज और विचार संसार श्री चमूपति ।)
कविता कुसुमाञ्जली ।)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार [भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए] ५)
लहसुन : प्याज श्री रामेश बेदी २॥)
शहद [शहद की पूरी जानकारी के लिए] ,, ३)
तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण] ,, २)
सोंठ [तीसरा परिवर्धित संस्करण] ,, १॥)
देहाती इलाज [दूसरा संस्करण] ,, १)
मिर्च [काली, सफेद और लाल] ,, १)
त्रिफला [तीसरा संस्करण] ,, ३।)
सांपों की दुनियां ,, ४)

स्तूप निर्माण कला सचित्र सजिल्द, ३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १।)
जल चिकित्सा श्री देवराज १॥)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग श्री रामदेव ५)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द ७), ६)
अपने देश की कथा सत्यकेतु १।≈)
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)
ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार ।।।)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव ।)
महावीर गैरीबाल्डी श्री इन्द्र १।)

संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण] १)
नीतिशतक [संशोधित] ≈)
साहित्य-दर्पण [संशोधित] २)
संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [चौथा संस्क०] ।।।≈)
,, ,, २ भाग [तीसरा संस्करण] ।|≈)
अष्टाध्यायी, पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध श्री गङ्गादत्त ७), ७)
रघुवंश संशोधित [तीन सर्ग] ।)
साहित्य-सुधासंग्रह १, २, ३ बिन्दु १।), १।), १।)
संस्कृत साहित्य पाठावली ≠)

शालोपयोगी

विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग श्री यज्ञदत्त १।)
गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए] २॥)
भाषा प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार] ॥)
आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण] २॥)
ए गाइड टु दी स्टडी ऑफ़ संस्कृत ट्रांसलेशन एण्डकपोजीशन, दूसरा संस्क०, ३३६ पृष्ठ १)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।